ISSN-0971-8397

विकास को समर्पित मासिक

योजना

दिसम्बर, 2001

मूल्य: 7 रुपये

सहकारिता क्षेत्र में 'विपणन क्रान्ति'

मौजूदा परिस्थिति में खासकर विश्व व्यापार संगठन व्यवस्था को देखते हुए 'हरित क्रान्ति' की भांति सहकारिता क्षेत्र में 'विपणन क्रान्ति' लाने का आह्वान किया गया है। सहकारी संस्थाओं से कुशल प्रणाली अपनाने तथा सूचना तकनीकी आधारित एप्लीकेशन का इस्तेमाल करने पर बल देते हुए केन्द्रीय कृषि मंत्री अजित सिंह ने कहा कि इससे सहकारी क्षेत्र को घरेलू तथा वैश्विक बाजारों में विपणन क्रान्ति लाने में ज्यादा सहूलियत एवं समग्र मजबूती मिल सकेगी।

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (एनसीडीसी) की सामान्य परिषद की 53वीं बैठक में खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में अत्यधिक विकास की संभावनाओं के संदर्भ में कहा गया कि सहकारिताओं को इसका अधिक लाभ उठाना चाहिए। किसानों की आय में वृद्धि के अलावा ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक रोजगार सृजन के अवसर हैं जिनकी ओर सहकारी संस्थाओं को ध्यान देना चाहिए। बैठक में सहकारिताओं से निर्यात उन्मुखी एग्रो जोनों, फूड पार्कों, निर्यात प्रसंस्करण जोनों, विशेष टैक्नोलॉजी मिशन जैसी सरकारी योजनाओं का लाभ उठाने का भी आह्वान किया गया।

एनसीडीसी ने हाल ही में अपनी ब्याज दरों में 0.75 से 1.5 प्रतिशत तक की कमी की है जिससे निगम को स्पर्धा करने में आसानी होगी। जैव उर्वरक, टिश्यू कल्चर, सिंचाई और जल-ग्रहण, बीज मल्टीप्लीकेशन जैसी नई योजनाओं के बारे में भी बैठक में विशेष तौर से बताया गया। 25 प्रतिशत कैपिटल सब्सिडी के प्रावधान वाली नई शीत भंडारण स्कीम, चीनी और कताई मिलों के लिए मार्जिन-मनी स्कीम, तथा प्रसंस्करण यूनिटों आदि के निवेश हेतु वित्तपोषण की नई योजनाएं पहले ही शुरू हो चुकी हैं। इसके अलावा महिला आय सृजक कार्यक्रमों को कवर करने के लिए एनसीडीसी की विपणन, प्रसंस्करण, भंडारण और कृषि उत्पाद स्कीमों के दायरे में और विस्तार किया गया है। एनसीडीसी एग्रो क्लिनिकों की स्थापना हेतु तथा भंडारण के लिए कैपिटल इनटेन्सिव सब्सिडी मुहैया कराने के लिए भी वित्तीय सहायता प्रदान कर रही है।

वर्ष 2000-2001 में निगम द्वारा 647.83 करोड़ रुपये की धनराशि का संवितरण किया गया। कृषि प्रसंस्करण क्षेत्र को प्राथमिकता देते हुए लगभग 326.4 करोड़ रुपये अर्थात कुल सहायता का 50 प्रतिशत वितरित किया गया। वर्ष 2000-2001 के दौरान विपणन और निवेश कार्यकलापों के लिए 23 प्रतिशत धनराशि तथा आईसीडीसी सहित मत्स्यपालन, डेयरी, मुर्गीपालन, हैण्डलूम आदि कमजोर वर्गों की सहकारिताओं के लिए भी 21 प्रतिशत धनराशि वितरित की गई।

वर्ष 2000-2001 के दौरान एनसीडीसी ने पिछले वर्ष के 586.95 करोड़ रुपये के मुकाबले 816.53 करोड़ रुपये की लागत की परियोजनाएं मंजूर की।

योजना

योजना और विकास को समर्पित भारत
के नव-निर्माण की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 45 अंक 9 | दिसम्बर, 2001 | अग्रहायण-पौष, शक संवत् 1923

प्रधान संपादक
सुभाष सेतिया
कार्यकारी संपादक
अंजनी भूषण
सहायक संपादक
ललिता खुराना
संपादकीय कार्यालय
कमरा नं. 538 ए, योजना भवन, संसद मार्ग,
नई दिल्ली-110 001
दूरभाष : 3710473, 3717910
3715481/2510, 2508, 2566

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी
विज्ञापन एवं वितरण प्रबंधक
प्रकाश चन्द्र आहूजा
आवरण : **ऋत्विका मैत्रा**

'**यो**जना' हिन्दी के अतिरिक्त **असमिया, बंगला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उड़िया, पंजाबी, तेलुगू** तथा **उर्दू** भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। नई सदस्यता, सदस्यता के नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'निदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें :-

विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक IV, लेवल VII, आर.के. पुरम,
नई दिल्ली-110 066. टेलीफोन : 6100207, 6105590

चंदे की दरें
वार्षिक : 70 रु.; द्विवार्षिक : 135 रु.; त्रैवार्षिक 190 रु.

इस अंक में

- राज्य सरकारों द्वारा राजकोषीय अनुशासन आवश्यक — संदीप कुमार — 2
- सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में अनर्जक आस्तियों का प्रबंधन — नरेन्द्रपाल सिंह — 7
- भारतीय रिजर्व बैंक : नई ऋण नीति — अंजनी भूषण — 13
- भारत में निजी निगमित क्षेत्र — रवीन्द्र त्रिपाठी — 15
- शहरी गरीबों को आसरा देगी वाल्मीकि-अम्बेडकर आवास योजना — अनंत मित्तल — 20
- उदारीकरण में आदमी की जिंदगी — एम.एन. सिंह — 23
- बाल मजदूर—बचपन से दूर — योगेश चंद्र शर्मा — 27
- इलेक्ट्रानिक मीडिया के युग में प्रिंट मीडिया — विनोद कुमार — 31
- ट्रांसजीनिक फसलें—कितनी सार्थक कितनी निरर्थक — भूपेंद्र राय — 33
- पुष्प कृषि : रोजगार एवं निर्यात की अपरिमित संभावनाएं — आर.बी.एल. गर्ग — 37
- भारत का गौरव : कालिंजर दुर्ग — पीयूष मिश्र — 39
- पर्यावरण में सीसे की बढ़ती सान्द्रता एवं मानव स्वास्थ्य — दिनेश मणि — 41
- स्वास्थ्य-चर्चा — 43
- नए प्रकाशन — 46

पाठकों से

'योजना' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह जरूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों से सम्बद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो।

राज्य सरकारों द्वारा राजकोषीय अनुशासन आवश्यक

○ संदीप कुमार

ऊंची वृद्धि-दर प्राप्त करने के लिए बचत, निवेश तथा पूंजी-निर्माण की ऊंची दर हासिल करना अनिवार्य है। सीमित संसाधनों के साथ ऊंची वृद्धि-दर हासिल करने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों के राजस्व खाते में से गैर-विकासमूलक खर्चों को कम करना होगा। विडंबना यह है कि केंद्र और राज्य, दोनों स्तरों पर वेतन, भत्तों और ब्याज भुगतान पर खर्च बढ़ता जा रहा है।

आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार 1999-2000 में बाजार मूल्य पर सकल घरेलू बचत, सकल घरेलू निवेश और सकल घरेलू पूंजी निर्माण की दरें क्रमश: 22.3 प्रतिशत, 23.3 प्रतिशत और 26.1 प्रतिशत थी तथा सकल घरेलू उत्पाद की दर 6.4 प्रतिशत थी। भारत में वर्तमान पूंजी और उत्पादन के बीच जो अनुपात (आई.सी.ओ.आर.) है, उसके हिसाब से वर्तमान बचत दर पर अधिकतम 6.5 से 7 प्रतिशत की आर्थिक वृद्धि ही हासिल की जा सकती है। इससे अधिक वृद्धि के लिए हमें देश-विदेश से और अधिक पूरक निजी पूंजी निवेश तथा ऋण जुटाने की आवश्यकता होगी। यह कार्य बचत-दर को बढ़ाए बिना संभव नहीं होगा। ऊंची वृद्धि-दर प्राप्त करने के लिए बचत, निवेश तथा पूंजी-निर्माण की ऊंची दर हासिल करना अनिवार्य है। सीमित संसाधनों के साथ ऊंची वृद्धि-दर हासिल करने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों के राजस्व खाते में से गैर-विकासमूलक खर्चों को कम करना होगा। लेकिन विडंबना यह है कि केंद्र और राज्य, दोनों स्तरों पर वेतन, भत्तों और ब्याज भुगतान पर खर्च बढ़ता जा रहा है।

भारत में करों का संघीय ढांचा ऐसा है कि केंद्र के पास हमेशा राज्यों से अधिक संसाधन रहते हैं। संसाधनों की तंगी को देखते हुए केंद्र सरकार संविधान के तहत गठित वित्त आयोग और योजना आयोग की सिफारिशों पर राज्यों को संसाधनों का हस्तांतरण करती है। योजना आयोग कोई संवैधानिक निकाय नहीं है। राज्यों को उनके अपने राजस्व के अलावा तीन प्रकार के हस्तांतरण के माध्यम से धन मिलता है। हस्तांतरण से मिलने वाले धन में एक-तिहाई वित्त आयोग, तथा दो-तिहाई योजना आयोग की सिफारिश के आधार पर प्राप्त होता है।

वर्ष 1990 के आर्थिक संकट के बाद से लागू नई आर्थिक नीति में राजकोषीय स्थिति को सुदृढ़ करने और पुनर्गठित करने पर सबसे अधिक ध्यान दिया जा रहा है। केंद्र सरकार के करों और शुल्कों के अलावा केंद्र से हस्तांतरण के जरिए प्राप्त होने वाले संसाधनों में दो-तिहाई योजना आयोग के माध्यम से आता है। इसमें 70 प्रतिशत ऋण और 30 प्रतिशत गाडगिल फार्मूले के अनुसार अनुदान के रूप में होता है। ऐसे में केंद्र पर निर्भरता तथा कर्ज-भार कम करने के लिए सभी, और खासकर पिछड़े राज्यों के लिए राजकोषीय अनुशासन प्रमुख चुनौती बन गया है। न केवल राज्यों बल्कि वित्त आयोग तथा योजना आयोग के लिए भी सरकारों का राजकोषीय अनुशासन एक ज्वलंत समस्या बन गया है।

योजना आयोग ने दसवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण-पत्र में इस बात का उल्लेख किया है कि राज्यों पर ऋण का बोझ बढ़ रहा है और राज्य सरकारें ऋण को पूंजी-निर्माण कार्यों पर लगाने के बजाय उसे गैर-योजना खर्च में लगा रही हैं। राज्यों के राजस्व का आधार तो बढ़ नहीं रहा है लेकिन वेतन-भत्ता, पेंशन तथा ब्याज पर खर्च की उनकी जिम्मेदारी

बढ़ती जा रही है। राज्यों के लिए यह खतरे का संकेत है। निकट भविष्य में उनकी वित्तीय स्थिति बड़ी जटिल हो सकती है। दृष्टिकोण-पत्र में प्रस्तुत आंकड़ों के अनुसार पंचवर्षीय योजनाओं में राज्यों का योगदान नकारात्मक होने जा रहा है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में राज्यों का योगदान 18 प्रतिशत था जो आठवीं और नौवीं पंचवर्षीय योजना में घटकर 12 प्रतिशत रह गया।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में राज्यों पर ऋण का कुल बोझ 61,377 करोड़ रुपये था जो नौवीं पंचवर्षीय योजना में बढ़कर 2,15,334 करोड़ रुपये तक पहुंच गया। यही नहीं, राज्य सरकारें योजना व्यय के लिए आबंटित धन को वेतन-भत्ते और ब्याज के भुगतान में लगाने लगी हैं। चौदह राज्यों में पिछले 25 वर्षों के दौरान केवल पेंशन भुगतान में ही 200 गुना वृद्धि हुई है। वर्ष 1975-76 में ये राज्य कुल 100 करोड़ रुपये के अंदर ही पेंशन चुकता कर रहे थे जो 1998-99 में बढ़ कर 20,000 करोड़ रुपये तक पहुंच गया। उस समय राज्यों के राजस्व के दो प्रतिशत में पेंशन का भुगतान हो जाता था लेकिन 1999-2000 में यह बढ़कर 12 प्रतिशत हो गया। सकल घरेलू उत्पाद में करों का हिस्सा पिछले 20 वर्षों से स्थिर है। इसे देखते हुए पेंशन भुगतान की बढ़ोतरी चिंता का विषय है।

सारणी-1 में दिखाया गया है कि 1990-91 में राज्यों का गैर-विकास राजस्व खर्च 22,137 करोड़ रुपये था जो 1997-98 में बढ़कर 77,614 करोड़ रुपये हो गया। इस दौरान गैर-विकास खर्चों में चार गुना वृद्धि हुई जबकि विकास खर्च केवल 2.5 गुना बढ़ा। राज्य सरकारें अपने खर्चों की पूर्ति के लिए रिजर्व बैंक से ओवरड्राफ्ट पर धन लेने लगीं। ओवरड्राफ्ट के भुगतान के लिए उन्हें केंद्र से अल्प और मध्यम समय के लिए कर्ज लेना पड़ता है। पिछले कुछ वर्षों से उन्हें

सारणी-1

राज्य सरकारों का राजस्व व्यय

मद		वर्ष (करोड़ रुपये)	
I	विकासमूलक राजस्व व्यय	48855	111227
(i)	सामाजिक सेवाएं	27962	68269
(ii)	आर्थिक सेवाएं	20893	42958
II	गैर विकासमूलक राजस्व व्यय	22137	77614

स्रोत : भारत का सांख्यिकीय परिदृश्य, 1999

ओवरड्राफ्ट के लिए केंद्र से पूर्वानुमति लेनी पड़ती है। यही कारण है कि ऋण के लिए भी उनकी केंद्र पर निर्भरता बहुत बढ़ गई है।

सारणी-2 में दर्शाया गया है कि 1961 से 1981 के बीच राज्यों पर ऋण का बोझ आठ गुना बढ़ा जबकि 1981 से 1999 के बीच इसमें करीब 15 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वर्ष 1961 से 1981 के बीच राज्यों को केंद्र से दिया गया ऋण और अग्रिम नौ गुना बढ़ा जबकि 1981 से 1999 के बीच इसमें करीब 12 गुना उछाल आया। इस प्रकार राज्यों का कुल ऋण भार 1971-1999 के बीच 38 गुना बढ़ा क्योंकि राज्यों को अपना काम चलाने के लिए केंद्र से ऋण और अग्रिम अधिकाधिक लेना पड़ा। वर्ष 1980-81 में केंद्र की ऋण सहायता पर राज्यों की निर्भरता 16,980 करोड़ थी जोकि उनके कुल ऋण भार का करीब 71 प्रतिशत था। वर्ष 1998-99 में यह 2,02,078 करोड़ रुपये रहा जोकि उनके कुल ऋण भार का 60 प्रतिशत था। वर्ष 1985-86 में राज्यों द्वारा कुल ऋण पर 2940 करोड़ रुपये का ब्याज चुकता किया गया। वर्ष 1998-99 में यह बढ़कर 36,399 करोड़ रुपये हो गया। इसके परिणामस्वरूप राज्यों का ओवरड्राफ्ट बढ़ा है। राज्य सरकारों को अपने राजस्व खाते के खर्चों में अस्थायी असंतुलन दूर करने के लिए दो प्रकार की अग्रिम सहायता मिलती है :

(क) सामान्य अग्रिम साधन सहायता

(ख) विशेष अग्रिम साधन सहायता

वर्ष 1988 के बाद से 23 राज्यों के लिए सामान्य सहायता की अधिकतम सीमा 744.8 करोड़ रुपये तय कर दी गई है। इसी प्रकार 1996 से सामान्य और विशेष सहायता को बढ़ाकर उनके न्यूनतम नकद अधिशेष की क्रमशः 168 और 64 गुना कर दी गई। पहले यह क्रमशः 84 और 32 गुना थी। विशेष संसाधन सहायता की कुल सीमा क्रमशः 2324.40 करोड़ रुपये और 851.20 करोड़ रुपये हो गई है। अग्रिम संसाधन सहायता की सीमा बढ़ाकर दुगुनी कर दिए जाने के बाद भी 1996-97 में 16 राज्यों को ओवरड्राफ्ट लेना पड़ा। इनमें से नौ राज्यों ने बार-बार रिजर्व बैंक का दरवाजा खटकाया। वर्ष 1998-99 में 17 राज्य ओवरड्राफ्ट लेने को बाध्य हुए और 11 को कई बार इसकी आवश्यकता पड़ी। पांच राज्य रिजर्व बैंक को समय से पैसा लौटाने में विफल रहे।

राज्यों की राजकोषीय स्थिति की यही तस्वीर ऐसी निराशाजनक है। सारणी-3 में दिखाया गया है कि पांचवें वित्त आयोग के समय राज्यों को हस्तांतरित कुल राशि 4080 करोड़ रुपये थी।

लगातार बढ़ते हुए पांचवें वित्त आयोग तक यह 2,26,640 करोड़ रुपये तक पहुंच गई। इस प्रकार पांच वित्त आयोगों के बीच हस्तांतरण करीब 57 प्रतिशत बढ़ गया। दसवें वित्त आयोग के दौरान राज्यों को हस्तांतरित की गई राशि में 99 प्रतिशत कर राजस्व का हस्तांतरण था। राजस्व खाते के घाटे की स्थिति में अनुदान के अलावा आयोग ने केंद्र से राज्यों के लिए जिन और हस्तांतरणों की सिफारिश की थी, वे थे—(i) प्रशासनिक सुधारों और विशेष समस्याओं से निपटने के लिए 2609 करोड़ रुपये, (ii) संकट और आपदा सहायता के लिए 4728 करोड़ रुपये तथा, (iii) 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के तहत स्थानीय निकायों के लिए 5381 करोड़ रुपये। आयोग ने राज्यों का ऋण भार कम करने के लिए दो कार्यक्रम सुझाए जो इस प्रकार हैं: (i) राजकोषीय स्थिति में सुधार के लिए अच्छा काम करने वाले राज्यों पर केंद्र के पांच प्रतिशत ऋण माफ कर दिए जाएं, (ii) राजकोषीय दबाव में फंसे या विशेष श्रेणी के राज्यों को भी केंद्रीय ऋण में पांच प्रतिशत की माफी दी जाए। दसवें वित्त आयोग ने विशेष श्रेणी के राज्यों के लिए कुछ विशेष सहायता तथा बहुत अधिक राजकोषीय तंगी से गुजर रहे उड़ीसा, बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों के लिए विशेष राहत की सिफारिश की।

यह भी एक सच्चाई है कि पिछले चार दशकों के आर्थिक विकास से आयकर, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क तथा सीमा शुल्क के रूप में केंद्र सरकार के राजस्व का आधार बढ़ा है। केंद्र और राज्यों की संघीय व्यवस्था में केंद्रीय कर के स्रोत लचीले हैं जबकि राज्यों के करों में लोच का अभाव है। इसके कारण केंद्र और राज्यों के बीच असंतुलन और विपरीत परिस्थितियों का जन्म होता है। सामान्य रूप से सभी राज्यों तथा विशेष रूप से पिछड़े राज्यों को विकास कार्य तथा समाज कल्याण के लिए भारी मात्रा में संसाधनों की जरूरत होती है। आवश्यक आय नहीं होने से उनकी केंद्र पर निर्भरता बढ़ रही है। केंद्र इससे अनभिज्ञ नहीं है। दसवें वित्त आयोग ने राज्यों को अनुदान की मात्रा तय करने के लिए पिछड़ेपन के कुछ सूचक निर्धारित किए। इनमें प्रति व्यक्ति आय, साक्षरता, चिकित्सा सुविधाओं का अभाव, सड़क और परिवहन सुविधाओं की कमी जैसे सूचक शामिल किए गए। इसी आधार पर आयोग ने विभिन्न राज्यों के आठ समूहों में आधारभूत सुविधाओं का वर्गीकरण

सारणी-2

राज्यों का ऋण

मद	31 मार्च तक							
	1961	1971	1976	1981	1986	1991	1996	1999
(I) आंतरिक ऋण	592	1,847	2,893	4,443	8,049	19,211	43,218	72,539
	(21.6)	(21.1)	(21.1)	(18.51)	(15.01)	(17.4)	(20.4)	(21.6)
1. बाजार से उधार और बांड	500	1,233	2,107	3,047	6,145	15,626	36,018	57,264
2. रिजर्व बैंक से अग्रिम संसाधन	42	375	287	482	286	679	24	209
3. बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों से ऋण	50	239	499	914	1,618	2,906	7,225	15,070
(II) केंद्र सरकार से ऋण और अग्रिम	2,014	6,365	9,682	16,980	38,786	74,117	1,31,506	2,02,078
	(73.5)	(72.8)	(70.6)	(70.9)	(72.3)	(67.2)	(62.0)	(60.1)
(III) भविष्य निधि एवं पेंशन, आदि	133	537	1,142	2,536	6,825	16,961	37,502	61,748
	(4.9)	(6.1)	(8.3)	(10.6)	(12.7)	(15.4)	(17.6)	(18.3)
(IV) कुल ऋण	2,739	8,749	13,717	23,959	53,660	1,10,289	2,12,226	3,36,365
	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)

स्रोत : रिजर्व बैंक की करेंसी और वित्तीय रिपोर्ट तथा आर्थिक सर्वेक्षण के विभिन्न अंक

नोट : कोष्ठक में लिखे अंक योग का प्रतिशत बताते हैं।

किया। राज्यों की यह मांग पूरी करने के लिए कि केंद्र जिन करों में उन्हें हिस्सेदार बनाता है उनमें अधिक लोचशील करों को भी शामिल किया जाए, आयोग ने केंद्र के सभी करों को बंटवारे वाले पूल में शामिल करने और उसमें से 29 प्रतिशत राज्यों में बांटने की सिफारिश की।

योजना आयोग भी केंद्र द्वारा योजना सहायता देने के गाडगिल फार्मूले को 11 वर्ष बाद अब बदलने का विचार कर रहा है। इस समय विचार चल रहा है कि केंद्र सरकार राज्यों को 50: 50 के अनुपात में ऋण और अनुदान दे। इस समय विशेष श्रेणी के राज्यों को छोड़ अन्य राज्यों को योजना सहायता के तहत 70 प्रतिशत राशि ऋण और 30 प्रतिशत अनुदान के रूप में दी जाती है। इसका उद्देश्य राज्यों को अस्त-व्यस्त राजकोषीय स्थिति से उबारना तथा उन्हें राजकोषीय सुधारों के लिए प्रोत्साहित करना है। इस प्रकार विशेष श्रेणी के राज्यों को मदद का पुराना तरीका यानी 90 प्रतिशत अनुदान और 10 प्रतिशत ऋण वाला ही बना रहेगा लेकिन दूसरे राज्यों को अनुदान का हिस्सा बढ़ने से लाभ होगा।

सरकार अच्छा काम करने वाले राज्यों को और अधिक अनुदान देने के लिए भारांक की वर्तमान व्यवस्था में संशोधन करने पर भी विचार कर रही है। नई व्यवस्था में केंद्र की ओर से मिलने वाली सहायता का मुख्य आधार संभवत: जनसंख्या को नहीं बनाया जाएगा जैसा कि इस समय होता है। इसमें कर-संग्रह और राजकोषीय अनुशासन जैसे कार्यनिष्पादक आधारों को अपेक्षाकृत अधिक भार दिया जाएगा।

वर्तमान फार्मूले के अंतर्गत कार्यकुशलता प्रांचलों यानी पैरामीटर्स को 7.5 प्रतिशत तक भारांक दिया जा सकता है। कार्यकुशलता का निर्णय करों के संग्रह और राजकोषीय प्रबंध के साथ-साथ जनसंख्या नियंत्रण, बाल कल्याण, प्राथमिक शिक्षा और भूमि सुधार जैसे राष्ट्रीय लक्ष्यों की ओर राज्य की प्रगति के आधार पर किया जाता है। लेकिन विशेष समस्याग्रस्त राज्यों को अनुदान देने के मामले में योजना आयोग को विवेक के आधार पर निर्णय करने का अधिकार प्राप्त है।

राज्यों की राजकोषीय स्थिति में सुधार तथा राजकोषीय अनुशासन बरतने के लिए प्रोत्साहन देने हेतु 11वें वित्त आयोग ने पूरक प्रतिवेदन में सभी राज्यों में राजकोषीय सुधार निगरानी कार्यक्रम चलाने की सिफारिश की है। आयोग के छह-सूत्रीय फार्मूले में राजकोषीय सुधार के उपायों को ज्यादा भार दिया गया है। आयोग ने कर वसूली बढ़ाने में 5 प्रतिशत और राजकोषीय अनुशासन को 7.5 प्रतिशत भारांक दिया है। 10वें वित्त आयोग ने अपने पांच-सूत्रीय फार्मूले में इन दोनों प्रांचलों को कुल मिलाकर 10 प्रतिशत भारांक दिया था। सरकार ने 11वें वित्त आयोग की जिन प्रमुख सिफारिशों को स्वीकार किया है वे इस प्रकार हैं—

(1) राजस्व घाटा अनुदान के रूप में 15 राज्यों को 2000-05 तक दी जाने वाली राशि का 15 प्रतिशत एक प्रोत्साहन कोष में डाल दिया जाए। इस कोष में केंद्र भी बराबर का योगदान करे और इससे सभी राज्यों को राजकोषीय सुधारों की दिशा में

सारणी-3

पिछले पांच वित्त आयोगों के माध्यम से संसाधनों का हस्तांतरण

(करोड़ रुपये में)

आयोग	कर हस्तांतरण	जमा संबंधी	अन्य अनुदान	कुल अनुदान	कुल हस्तांतरण
पांचवां	3,590 (88)	490	—	490	4,080 (100)
छठा	6,940 (80)	820	930	1750 (20)	8,690 (100)
सातवां	18,810 (97)	140	390	530 (3)	19,340 (100)
आठवां	33,130 (93)	970	1,420	2,390 (7)	35, 520 (100)
नवां	87,880 (83)	15,010	3,140	18,160 (17)	1,06,040 (100)
दसवां	2,06,340 (99)	7,580	12,720	20,300 (1)	2,26,640 (100)

नोट : कोष्ठक में लिखे अंक योग का प्रतिशत बताते हैं।

स्रोत : विभिन्न वित्त आयोगों की रिपोर्ट।

उनकी कुशलता के आधार पर अनुदान दिए जाएं। इस कोष में राज्यों और केंद्र से प्राप्त कुल योगदान 10,607.72 करोड़ रुपये होगा और इससे प्रत्येक वर्ष 2121.54 करोड़ रुपये का अनुदान दिया जा सकेगा। आयोग की सिफारिश है कि सुधार, विशेष समस्या और स्थानीय निकायों के लिए केंद्र से मिली अनुदानराशियों में जितने का उपयोग नहीं हो पाएगा उसे 2004-05 के वित्त वर्ष में प्रोत्साहन कोष में डाल दिया जाए।

(2) राज्यों के राजकोषीय घाटे कम करने के लिए उनकी विशेषताओं के आधार पर ऐसे राजकोषीय सुधार कार्यक्रम बनाए जाएं जिनकी निगरानी की जा सके।

(3) निगरानी के लिए केंद्र द्वारा 'मानिटरिंग एजेंसी' बनाई जाए जो ग्यारहवें वित्त आयोग की स्वीकृत सिफारिशों के आधार पर प्रत्येक राज्य की विशिष्ट परिस्थिति को ध्यान में रखकर राजकोषीय सुधार कार्यक्रम तैयार करे।

(4) ग्यारहवें वित्त आयोग द्वारा प्रस्तावित और सरकार द्वारा स्वीकृत राजस्व घाटा अनुदान के 85 प्रतिशत भाग को कार्यनिष्पादन के साथ जोड़े बगैर राज्यों को हस्तांतरित कर दिया जाए लेकिन 15 प्रतिशत हिस्से को रोका या कार्यनिष्पादन से जोड़ा जा सकता है।

(5) निगरानी योग्य कार्यक्रम में राजस्व बढ़ाने तथा खर्च नियंत्रित करने के काम को बराबर का महत्व दिया जाए।

(6) प्रोत्साहन राशि का हिस्सा सभी राज्यों के लिए होगा और इसमें राज्यों को प्रत्येक वर्ष राजकोषीय सुधार की दिशा में उनकी प्रगति के आधार पर धन मिलेगा।

(7) यदि राज्य को किसी वर्ष अपने लिए निर्धारित प्रोत्साहन कोष का हिस्सा नहीं मिल पाता है तो वह हमेशा के लिए समाप्त होने की बजाय उस राज्य को अगले वर्ष भी मिल सकता है। पहले चार वर्ष तक किसी राज्य का हिस्सा दूसरे राज्य को नहीं जाएगा लेकिन पांचवे वर्ष यह साझा पूल में डालकर अच्छी प्रगति करने वाले राज्यों में बांट दिया जाएगा। इस प्रकार प्रगति दर्ज करने वाले राज्य अपने निर्धारित हिस्से से अधिक अनुदान प्राप्त कर सकेंगे। यही बात गैर-योजना राजस्व घाटे संबंधी अनुदान की बची/रोकी गई राशि के लिए भी लागू होगी।

(8) 2004-05 में जारी की जाने वाली जो अनुदान राशि रोक ली गई है वह राज्य विशेष की प्रगति की समीक्षा के बाद फिर जारी की जा सकती है। लेकिन फिर भी कोई राशि बच जाती है तो वह साझा पूल में डाल कर बाकी राज्यों में बांटी जा सकती है।

(9) इस प्रोत्साहन के अलावा केंद्र सरकार अच्छा राजकोषीय प्रबंध दिखाने वाले राज्यों को अग्रिम संसाधन सहायता तथा खुले बाजार से अतिरिक्त ऋण जुटाने की छूट भी दे सकती है।

राजकोषीय उत्तरदायित्व विधेयक संबंधी समिति ने राजकोषीय प्रणाली के विभिन्न पहलुओं पर विचार कर राजकोषीय उत्तरदायित्व के बारे में एक विधेयक का मसौदा तैयार किया। उसी के अनुसार दिसंबर 2000 में राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंध विधेयक लोकसभा में रखा गया। प्रस्तावित विधेयक में केंद्र सरकार को दायित्व दिया गया है कि वह सूझबूझ और उत्तरदायित्व के साथ राजकोषीय नीति का संचालन करने तथा और अधिक वृहद आर्थिक संतुलन का मार्ग आसान बनाने के लिए संस्थागत ढांचा स्थापित करे। इस विधेयक के माध्यम से राजकोषीय घाटा कम करने, सरकार पर ऋण की वृद्धि सीमित रखने तथा मध्यमकाल में ऋण को सकल घरेलू उत्पाद के एक निश्चित भाग तक सीमित करने का उद्देश्य है। इसके प्रावधानों के तहत आगे सरकारों को राजकोषीय स्थिति व्यवस्थित करने के लिए पूर्व-निर्धारित रास्तों का अनुगमन करना होगा। इस विधेयक के प्रावधान केवल केंद्र सरकार के लिए हैं। इसी प्रकार राज्य सरकारें अपने स्तर पर ऐसे ही कानून बनाएंगी।

केंद्र सरकार राजकोषीय अनुशासन को स्वयं गंभीरता से ले रही है। इसके अलावा 11वें वित्त आयोग और 10वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र के माध्यम से केंद्र ने राज्यों को स्पष्ट संकेत दे दिया है कि वे राजकोषीय सुव्यवस्था के बारे में अपने दायित्वों से बच नहीं सकते।

राज्य सरकारों को राजकोषीय अनुशासन की समस्या को गंभीरता से लेना होगा। कर और राजकोषीय सुधारों के बारे में विभिन्न समितियों की सिफारिशों में विभिन्न राज्यों को अतिरिक्त राजस्व जुटाने तथा राजकोषीय अनुशासन बरतने जैसे सुझाव पहले भी दिए जा चुके हैं। आवश्यकता है इच्छा शक्ति दिखाने की।

राज्य सरकारों को इस पर विचार कर इसको लागू करना चाहिए क्योंकि लोकतांत्रिक व्यवस्था में वे न केवल जनता के प्रति प्रतिबद्ध हैं बल्कि भावी पीढ़ियों की थाती भी उनको संजोकर रखनी है। ❑

(लेखक डी.डी.यू., गोरखपुर विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग में वरिष्ठ प्रवक्ता हैं।)

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में अनर्जक आस्तियों का प्रबंधन

○ नरेन्द्रपाल सिंह

भारत की तुलना अन्य देशों से की जाए तो यहां सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में अनर्जक आस्तियों की दर बहुत अधिक है। आर्थिक सुधार कार्यक्रम हेतु गठित नरसिम्हन समिति द्वारा अनर्जक आस्तियों को वर्ष 2000 तक 5 प्रतिशत से कम तथा वर्ष 2002 तक 3 प्रतिशत से कम लाने का लक्ष्य रखा गया था। आज ये अनर्जक आस्तियां 60 हजार करोड़ रुपये से ऊपर हो गई हैं जो बैंकिंग उद्योग की स्थिरता के लिए एक बड़ा संकट है।

वर्ष 1991 में लागू आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया के फलस्वरूप भारत सरकार एवं भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंकिग उद्योग की समीक्षा के अन्तर्गत बैंकों के तुलन-पत्रों में पारदर्शिता लाने के लिए कई सुधार कार्यक्रम लागू किए जिससे 'अनर्जक आस्तियों' की अवधारणा का आविर्भाव हुआ। बैंकिंग उद्योग तब तक ऋणों पर अर्जित ब्याज के उपार्जित होते ही उसे अपनी आय में शामिल कर लेते थे जबकि मूलधन तथा उसके ब्याज का कुछ अंश मात्र ही वास्तविक रूप में वसूल हो पाता था। इस कारण लाभांश का वितरण वास्तविक लाभ में से न होकर पूंजी में से होने लगा तथा बैंकों की तरलता पर विपरीत प्रभाव पड़ने लगा। आज बैंकों की अनर्जक आस्तियां लगभग 60 हजार करोड़ रुपये से ऊपर हैं जो बैंकिंग उद्योग की स्थिरता के लिए एक बड़ा संकट है।

अनर्जक आस्तियों से आशय किसी बैंक या वित्तीय संस्थान द्वारा प्रदान किए गए वे ऋण अथवा अग्रिम हैं जिन्हें ऋणी ने देय तिथि तक चुकता नहीं किया है। दूसरे शब्दों में, किसी भी ऋण या अग्रिम में प्रयुक्त आस्ति को गैर-उत्पादक उस समय माना जाता है जब उस ऋण खाते से बैंक को आय प्राप्त होनी बंद हो जाती है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 1992 में बैंकों को सूचित किया गया था कि देय तिथि के बाद 30 दिन तक कोई राशि बकाया रहती है तो उसे अतिदेय (पोस्ट-डयू) माना जाए। परंतु भुगतान और निपटान प्रणाली, वसूली माहौल में सुधार, बैंकिंग प्रौद्योगिकी में उन्नयन आदि के कारण यह संकल्पना बेकार हो गई है। अत: 31 मार्च, 2001 से अतिदेय अवधारणा समाप्त करने का निर्णय लिया गया है। भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार उक्त तिथि से अनर्जक आस्ति ऐसा अग्रिम माना जाएगा जहां—

— मियादी ऋण के संबंध में ब्याज और/अथवा मूलधन की किस्त 180 दिन से अधिक समय के लिए बकाया रहे।
— ओवरड्राफ्ट/कैश/क्रेडिट के सबंध में खाता 180 दिन से अधिक अवधि के लिए अव्यवस्थित रहे।
— खरीदे गए और बट्टाकृत बिलों के संबंध में बिल 180 दिन से अधिक समय के लिए बकाया हो।
— कृषि प्रयोजनों के लिए मंजूर किसी अग्रिम के मामलें में ब्याज और/या मूलधन की किश्त दो फसल मौसमों के लिए बकाया रहें, परंतु वह दो छमाहियों से अधिक समय के लिए बकाया नहीं हो।
— अन्य खातों के मामले में प्राप्य कोई राशि 180 दिन से अधिक समय के लिए बकाया रहे।

इस प्रकार यदि कोई कंपनी या संस्था ऋण राशि चुकाने में लगातार दो तिमाही डिफाल्ट करती है तो बैंक डिफाल्ट की गई राशि को (एन.पी.ए.) अनर्जक आस्तियों के खाते में हस्तांतरित कर देते हैं। इस हस्तांतरण से बैंकों के लाभ पर विपरीत प्रभाव पड़ता है क्योंकि लाभ में से इस राशि का प्रावधान करना पड़ता है।

प्रबंधन

सभी प्रकार के व्यवसायों तथा उद्योगों की तरह बैंकों को भी पर्याप्त पूंजी की आवश्यकता है। पूंजी की पर्याप्त मात्रा से बैंकों की आर्थिक स्थिति की स्थिरता स्पष्ट प्रकट होती है। पूंजी की स्थिति मजबूत होने से बैंक के ग्राहकों के साथ-साथ समाज का तथा निवेशकों का भी बैंक के प्रति विश्वास मजबूत होता है। आज बैंकिंग उद्योग का वैश्वीकरण हो चुका है। अनर्जक आस्तियों का उचित प्रबंधन न करने से बैंकों की पूंजी ऋणात्मक स्तर तक पहुंच जाए तो उनकी विश्वसनीयता कम होने लगती है। ऐसी स्थिति में देशी तथा विदेशी प्रमुख कंपनियां उन्हीं बैंकों के साथ व्यापार करती हैं जिनका पूंजीगत ढांचा ज्यादा से ज्यादा सुदृढ़ हो।

आर्थिक सुधारों की परिकल्पना के अन्तर्गत ब्याज दरों के अविनियमन के कारण व्यापार जगत में प्रतिस्पर्धा का रूप बिगड़ गया है क्योंकि आर्थिक रूप से सुदृढ बैंक कम ब्याज दरों पर अधिक ऋण की नीति द्वारा ग्राहकों को आकर्षित करते हैं तथा अधिक ब्याज दरों पर और अधिक जमाओं को प्राप्त भी कर लेते हैं। बड़े ऋणकर्ताओं का ऐसे बैंकों के प्रति रुझान बढ़ने से कमजोर आर्थिक स्थिति वाले बैंकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है जिससे उन्हें ऋणियों की शर्तों पर आवश्यकता से अधिक ऋण प्रदान करना पड़ा। वित्तीय बाजारों के उदारीकरण, घरेलू एवं बाहरी बाजारों के वैश्वीकरण, नियंत्रण मुक्त अर्थव्यवस्था, ब्याज दरों का अविनियमन, ऋणों से संबंधित जोखिम आदि कारणों से अनर्जक आस्तियों के प्रबंध की आवश्यकता है।

आस्ति वर्गीकरण

बैंक की आस्तियों को मुख्य रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

(अ) निष्पादित अथवा मानक आस्तियां

जिन आस्तियों में सामान्य व्यावसायिक जोखिम के अलावा अन्य किसी प्रकार का जोखिम न हो वे मानक आस्तियां कहलाती हैं। इनमें केंद्र व राज्य सरकार द्वारा गारंटीकृत ऋण, स्टाफ ऋण तथा ऐसे ऋण जो अपने बैंक की जमा रसीद, जीवन बीमा पॉलिसी, राष्ट्रीय बचत पत्र, किसान विकास पत्र, इंदिरा विकास पत्र की प्रतिभूति से सुरक्षित हों, शामिल किए जाते हैं।

बैंकों में आस्तियों का वर्गीकरण

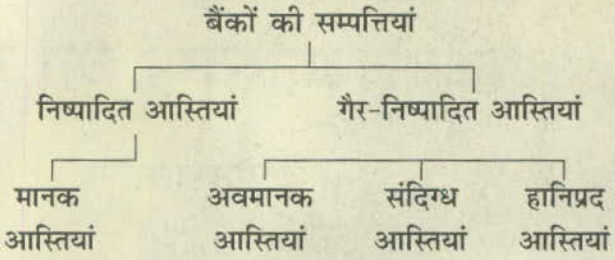

(ब) गैर निष्पादित या अनर्जक आस्तियां

बैंक की अनर्जक आस्तियों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(1) अवमानक आस्तियां— जब किसी अनियमित खाते में दो तिमाहियों में ब्याज का भुगतान न किया गया हो तो ऐसा खाता सर्वप्रथम अवमानक आस्तियों की श्रेणी में गिना जाता है। किसी भी अनुत्पादक खाते को अधिक से अधिक दो वर्ष के लिए अवमानक श्रेणी में रखा जा सकता है।

(2) संदिग्ध आस्तियां— संदिग्ध आस्तियां वे अनुत्पादक ऋण हैं जो निरंतर दो वर्ष तक अवमानक आस्तियों की श्रेणी में रह चुके हैं तथा उनके विरुद्ध बैंक के पास कुछ न कुछ प्रतिभूति सुरक्षित है। यदि किसी बकाया राशि की तुलना में प्रतिभूति का मूल्य काफी कम हो, या प्रतिभूति उपलब्ध न हो, या ऋणी ने कपट किया हो तो ऐसी स्थिति में जिन ऋण खातों से वसूली होने की संभावना नगण्य हो, ऐसे खातों को सीधे संदिग्ध खातों की श्रेणी में रखा जा सकता है। फिर भी इन खातों के संबंध में आर्थिक सुरक्षा की गारंटी बकाया देयताओं के 5 प्रतिशत से अधिक कवर कर सकने योग्य होनी चाहिए।

(3) हानिप्रद आस्तियां— जो अनुत्पादक ऋण खाते दो वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए अवमानक आस्तियों की श्रेणी में रह चुके हैं उन पर कोई प्रतिभूति कवर उपलब्ध नहीं है या प्रतिभूति के मूल्य द्वारा 5 प्रतिशत बकाया राशि भी कवर नहीं होती, ऐसे खातों को हानिप्रद आस्तियों की श्रेणी में डाल दिया जाता है। ऐसे खातों के लिए बकाया राशि का 100 प्रतिशत प्रावधान बैंकों को करना पड़ता है, इसके अतिरिक्त संदिग्ध आस्तियों की श्रेणी में दो वर्ष से डाले हुए ऋण खातों को हानिप्रद आस्तियों में ले जाने की कार्यवाही कर दी जाती है।

सारणी-1 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि मानक आस्तियां जो कि 1993 में 1,30,087 करोड़ रुपये थी वह बढ़कर माह 2000 के अंत तक 3,26,783 करोड़ रुपये तक पहुंच गई। यदि प्रतिशत रूप में देखा जाए तो लगभग 9 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज

की गई है। अवमानक, संदिग्ध एवं हानिप्रद आस्तियां सभी में विगत 8 वर्षों में कमी आई है। जो 1993 में क्रमश: 7.4, 11.9, 2.3 प्रतिशत थी वह घटकर वर्ष 2000 के अंत तक क्रमश: 4.3, 8.0, 1.7 प्रतिशत रह गई हैं। कुल अनर्जक आस्तियां भी जो 1993 में 23.2 प्रतिशत थी, वह घटकर वर्ष 2000 के अंत तक 14 प्रतिशत तक आ गई हैं अनर्जक आस्तियों में कमी तो काफी हुई है लेकिन यह अर्न्तराष्ट्रीय स्तर को देखते हुए आज भी चिन्ता का विषय है।

वर्तमान स्थिति

भारत की तुलना यदि अन्य देशों से की जाए तो हमारे यहां सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में अनर्जक आस्तियों की दर बहुत अधिक है। भारतीय बैंकों में प्रति वर्ष दो से तीन प्रतिशत तक गैर-अनर्जक आस्तियों में कमी की गई है परंतु यह सुखद स्थिति नहीं है क्योंकि आर्थिक सुधार कार्यक्रम हेतु गठित नरसिम्हन समिति के अनुसार वर्ष 2000 तक 5 प्रतिशत से कम तथा वर्ष 2002 तक 3 प्रतिशत से कम अनर्जक आस्तियों का लक्ष्य रखा गया है। कुछ बैंकों में अनर्जक आस्तियों का प्रतिशत बहुत ऊंचा होने से उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं कही जा सकती। जिनमें प्रमुख रूप से इंडियन बैंक, देना बैंक, युनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया, इलाहाबाद बैंक, स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एंड जयपुर हैं जिनके अन्तर्गत अनर्जक आस्तियों का प्रतिशत 10 प्रतिशत से ऊंचा है। इसके साथ ही कुछ सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में अनर्जक आस्तियों की स्थिति अर्न्तराष्ट्रीय स्तर को भी छूती है। जिन बैंकों की कार्यशैली बहुत अच्छी है उनमें कारपोरेशन बैंक, सिंडिकेट बैंक, आन्ध्रा बैंक, औरियन्टल बैंक ऑफ कामर्स, केनरा बैंक आदि हैं जिनके अन्तर्गत यह प्रतिशत 5 या उससे कम अनर्जक आस्तियां हैं।

कारण

पिछले कुछ वर्षों से भारतीय बैंकिंग प्रणाली में अलाभकारी सम्पत्तियों में भारी वृद्धि दर्ज की गई है और इस पर आज नियन्त्रण की आवश्यकता है ताकि पुराने अनर्जक ऋणों की वसूली हो सके और नए ऋण इस श्रेणी में न आए। बैंक ऋण के रूप में दी गई धनराशि का उपयोग निर्दिष्ट कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्य जैसे विस्तार, विविधीकरण, आधुनिकीकरण

सारणी-1

सावर्जनिक बैंकों में ऋण सम्पत्तियों का वर्गीकरण 1993-2000

(रुपये करोड़ में)

31 मार्च के अंत में

क.सं. सम्पत्तियों का वर्गीकरण	1993	1994	1995	1996	1997	1998	1999	2000
1. मानक आस्तियां	130087	124580	158967	189660	200637	239318	273618	326783
	(76.8)	(75.2)	(80.5)	(82.0)	(82.2)	(84.0)	(84.1)	(86.0)
2. अवमानक आस्तियां	12552	12163	7758	9299	12471	14463	16033	16361
	(7.4)	(7.3)	(3.9)	(4.0)	(5.1)	(5.1)	(4.9)	(4.3)
3. संदिग्ध आस्तियां	20106	23317	29913	24707	26015	25819	29252	30535
	(11.9)	(14.1)	(11.6)	(10.7)	(10.7)	(9.1)	(9.0)	(8.0)
4. हानिप्रद आस्तियां	3930	4073	3732	4351	5090	5371	6425	6398
	(2.3)	(2.5)	(1.9)	(1.9)	(2.1)	(1.9)	(2.0)	(1.7)
5. 25000/- रु. से अधिक ऋण	2665	1488	3982	3304	—	—	—	—
(अनर्जक आस्तियों में शामिल)	(1.6)	(0.9)	(2.0)	(1.4)	—	—	—	—
6. कुल अनर्जक आस्तियां	39253	41041	38385	41661	43576	45643	51710	53294
(2 से 5 तक योग)	(23.2)	(24.8)	(19.5)	(18.0)	(17.8)	(16.0)	(15.9)	(14.0)
7. कुल अग्रिम	169340	165621	197352	231321	244213	284971	325328	380077
(1 से 6 तक योग)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)	(100.0)

नोट :— कोष्ठक में दर्शाई गई संख्या कुल अग्रिमों का प्रतिशत है।

स्रोत:— स्टेटिस्टिकल टेबल रिलेटिंग इ बैंकस इन इंडिया, आर.बी.आई., 1999-2000

तथा सहयोगी इकाइयों की स्थापना आदि के लिए किया जाता है जिससे कुछ समय बाद कर्ज में दी गई यह राशि अलाभकारी हो जाती है। इसके अतिरिक्त कच्चे माल की कमी, कीमतों में वृद्धि, बिजली की भारी समस्या, औद्योगिक मंदी, शेयर बाजार में उतार-चढ़ाव तथा प्राकृतिक विपदा या दुर्घटना आदि की वजह से भी अलाभकारी सम्पत्तियों में वृद्धि हो रही है। राष्ट्रीयकरण के बाद देश के आर्थिक और सामाजिक विकास का जिम्मा भी बैंकिंग उद्योग को दिया गया था तथा लक्ष्यों पर आधारित कार्यक्रमों की शुरूआत की गई जिनके लिए बैंकिंग उद्योग द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान करना आवश्यक था। लक्ष्यों की इस होड़ में ऋणों की वसूली पर ध्यान केन्द्रित नहीं करने के कारण अतिदेय ऋणों की मात्रा बढ़ती गई और बैंकिंग उद्योग की आस्तियां अनर्जक होती गई। इसके प्रमुख कारण निम्न हो सकते हैं—

(क) बाहरी कारण

(1) समय-समय पर केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा ऋण माफी योजनाओं को लागू करना।
(2) सरकारी नीतियों के क्रियान्वयन में त्रुटि।
(3) उद्योगों के विकास के लिए पर्याप्त वातावरण का न होना।
(4) देश की कानून व्यवस्था में ऋणी के प्रति सदैव लचीला व्यवहार।
(5) कर्जदारों द्वारा धन का दूसरे कार्यों में इस्तेमाल।
(6) चूककर्ताओं का आम जनता की जानकारी में न होना।

(ब) संस्थागत कारण

(1) ऋण स्वीकृति के समय सिर्फ उपलब्ध प्रतिभूतियों को ही आधार बनाना।
(2) ऋण स्वीकृति पूर्व ऋण प्रक्रिया में आवश्यक औपचारिकताओं को नजरअंदाज करना।
(3) ऋणकर्ताओं का सही चयन न किया जाना।
(4) ऋण अदायगी अनुसूची का सही निर्धारण नहीं एवं अनावश्यक शर्ते लगाना।
(5) ऋण की सीमा का उचित निर्धारण नहीं।
(6) ऋण दस्तावेज निष्पादन में कमियां।
(7) लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रदान किए गए ऋण।
(8) ऋण वितरण के बाद निगरानी पर ध्यान नहीं।
(9) अन्य वित्तीय संस्थाओं से समन्वय आवश्यक।
(10) ऋण वितरण में राजनैतिक दबाव।

(स) प्राकृतिक एवं अन्य कारण

(1) समय-समय पर आने वाली प्राकृतिक आपदाएं देश की कृषि, उद्योग एवं व्यवसाय को प्रभावित करती हैं।
(2) तकनीक संबंधी परिवर्तन;
(3) प्रतिस्पर्द्धात्मक क्षमता का अभाव;
(4) प्रबंध संबंधी कार्यकुशलता का अभाव;
(5) श्रमिकों के साथ तनावपूर्ण संबंध;
(6) कीमतों में वृद्धि।

उद्योग पर प्रभाव

बैंको के ऋणों की राशि वसूल न होने से निश्चित रूप से समाज और देश के प्रति बैंकों की जवाबदेही बढ़ जाती है। अनुत्पादक ऋणों में वृद्धि होने से बैंकिंग उद्योग पर कई विपरीत प्रभाव पड़ते हैं। इनमें एक प्रमुख समस्या जमाओं की स्थिति के ऋणात्मक होते जाने की है। बैंकों द्वारा प्राप्त की गई जमा-राशियों के नकद निधि अनुपात तथा सांविधिक चल निधि अनुपात के प्रावधान करने के बाद शेष जमाओं तथा पूर्व में दिए गए ऋणों की वसूली से प्राप्त राशि दोनो को ही नए ऋण एवं अपने स्वयं के खर्चे के लिए बैंकों द्वारा प्रयोग किया जाता है। लगातार ऋणों के अनुत्पादक होने से बैंकों के समक्ष निधियों की समस्या उत्पन्न हो जाती है। बैंकों को अपनी व्यवसाय प्रक्रिया चक्र जारी रखने के लिए आवश्यक निधि, अधिक लागत पर अल्पकालीन स्रोतों से जुटानी पड़ती है जिस कारण बैंको की लाभप्रदता प्रभावित होती है। अनुत्पादक ऋणों पर ब्याज प्राप्त न होने तथा बढ़ती हुई जमाराशियों पर लगातार ब्याज चुकाने के कारण ब्याज का अंतर कम होता जा रहा है। अनर्जक आस्तियों को वर्गीकृत कर अधिकतम जोखिम वाली राशियों का प्रावधान लाभ में से कर दिया जाता है जिस कारण बैंकों की लाभप्रदता घट रही है।

उदारीकरण के कारण बढ़ती प्रतिस्पर्धा में बैंकों को पूंजी पर्याप्तता तथा अर्थिक स्थिति को मजबूत दर्शानें वाले अनुपातों को अनुकूल बनाए रखने की प्रतिबद्धता होती है। परंतु अनुत्पादक आस्तियां इनको प्रतिकूल स्थिति में ले जाती हैं जिस कारण व्यावसायिक संस्थाओं, ग्राहकों तथा निवेशकों के दृष्टिकोण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अनुत्पादक आस्तियों की वसूली से संबंधित मुकदमों, उन पर नियंत्रण करने, समझौता प्रस्ताव तथा अन्य प्रयासों के लिए बैंकों को अपने पास उपलब्ध अर्जक आस्तियां नकद रूप में अतिरिक्त व्यय करनी पड़ती हैं।

सारणी-2

सार्वजनिक बैंकों में अनर्जक आस्तियों का प्रतिशत

(31 मार्च के अंत में)

(प्रतिशत में)

क.सं. बैंक का नाम	सकल अनर्जक आस्तियां/सकल अग्रिम					निबल अनर्जक आस्तियां/निबल अग्रिम				
	1996	1997	1998	1999	2000	1996	1997	1998	1999	2000
राष्ट्रीयकृत बैंक										
1. इलाहाबाद बैंक	23.98	23.93	23.18	20.09	19.07	16.00	14.84	15.09	12.54	12.24
2. आन्ध्रा बैंक	11.61	11.81	9.86	9.42	7.83	3.29	4.10	2.92	4.46	3.47
3. बैंक ऑफ बड़ौदा	16.16	17.15	14.63	16.03	14.73	8.15	8.94	6.60	7.70	6.95
4. बैंक ऑफ इण्डिया	14.49	11.78	11.55	11.87	12.90	7.00	6.52	7.13	7.29	8.61
5. बैंक ऑफ महाराष्ट्र	21.87	20.67	17.39	15.97	12.65	9.39	9.66	8.59	8.72	6.97
6. केनरा बैंक	17.93	20.26	18.69	18.32	10.42	7.45	9.32	7.52	7.09	5.28
7. सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया	23.91	25.00	20.47	17.14	16.63	13.49	14.40	12.21	9.79	9.84
8. कारपोरेशन बैंक	9.67	9.92	7.60	5.66	5.39	2.26	3.63	2.93	1.98	1.92
9. देना बैंक	14.70	15.10	13.73	12.37	18.15	7.30	9.40	8.28	7.67	13.47
10. इण्डियन बैंक	34.15	39.12	38.96	38.70	32.77	23.87	25.24	26.01	21.67	16.18
11. इण्डियन ओवरसीज बैंक	22.59	15.80	13.38	13.32	13.18	8.57	7.64	6.26	7.39	6.65
12. ओरियन्टल बैंक ऑफ कामर्स	5.68	7.36	6.16	6.30	5.54	3.60	5.64	4.84	4.50	3.80
13. पंजाब एण्ड सिंध बैंक	27.70	30.71	26.79	23.01	15.27	10.34	12.04	10.84	10.48	9.39
14. पंजाब नेशनल बैंक	18.74	16.31	14.50	14.12	13.19	12.70	10.38	9.60	8.96	8.52
15. सिंडिकेट बैंक	20.97	19.32	15.31	10.72	7.74	8.39	7.53	5.78	3.93	3.17
16. यूको बैंक	24.54	28.35	24.04	22.55	18.79	11.43	13.73	11.14	10.83	8.75
17. यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया	10.38	10.38	11.18	12.41	12.27	5.94	6.98	7.66	8.70	7.97
18. यूनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया	38.00	36.20	33.50	32.38	27.60	23.28	18.70	14.10	15.96	12.70
19. विजया बैंक	20.36	18.73	15.21	13.65	11.52	11.90	9.56	7.50	6.72	6.65
स्टेट बैंक समूह										
20. स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया	15.96	16.02	14.14	15.56	14.25	6.61	7.30	6.07	7.18	6.41
21. स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर	12.45	13.83	11.73	16.11	16.15	6.11	7.96	7.13	10.45	10.14
22. स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद	17.89	19.19	18.96	15.94	14.18	9.94	11.42	10.88	8.78	7.30
23. स्टेट बैंक ऑफ इंदौर	14.20	15.81	15.05	14.68	10.80	9.62	11.29	10.96	10.10	7.55
24. स्टेट बैंक ऑफ मैसूर	14.54	16.92	17.47	16.96	13.89	8.59	10.96	10.75	10.55	8.12
25. स्टेट बैंक ऑफ पटियाला	11.49	11.32	11.88	13.98	10.99	6.60	5.88	7.04	8.23	6.09
26. स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र	13.50	14.79	14.83	15.43	13.71	5.70	6.07	6.57	7.70	7.87
27. स्टेट बैंक ऑफ त्रावणकौर	11.74	14.49	20.06	18.46	14.43	7.38	8.82	12.21	10.80	8.58
सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	18.00	17.84	16.02	15.89	14.02	8.90	9.18	8.15	8.13	7.42

स्रोत : भारत में बैंकिंग के विकास तथा रुझान पर रिपोर्ट; वर्ष 1997-98 तथा 1999-2000

वृद्धि पर रोक

अनर्जक आस्तियों की वसूली करना कठिन एवं समय साध्य कार्य है क्योंकि कानूनी व्यवस्था के अंतर्गत पर्याप्त प्रतिभूति होने के बावजूद भी बैंकों के वसूली दावे सफल नहीं होते हैं। अत: हमें ऐसे उपायों पर विचार करना होगा जिससे अनर्जक आस्तियों में वृद्धि न हो। इसके लिए हमें निम्न बातों को ध्यान में रखना होगा:

(अ) ऋण स्वीकृति पूर्व समीक्षा

ऋण स्वीकृति से पूर्व बैंकों को सही तरह से समीक्षा करनी चाहिए ताकि अनर्जक आस्तियों में वृद्धि न हो इस हेतु—

(1) ऋण हेतु आवेदक सम्मानित व्यक्ति हों और व्यवसाय का व्यावहारिक ज्ञान हो।

(2) ऋण प्रदान किए गए व्यवसाय हेतु वर्तमान तथा भविष्य में ढांचागत एवं आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध हो जाएंगी।

(3) ऋण राशि परियोजना के अनुरूप ही स्वीकृत हो।

(4) ऋण परियोजना सुदृढ़ हो तथा समान प्रवृत्ति के कार्य निष्पादन आंकड़ों से तुलनात्मक अध्ययन करना।

(5) ऋण उचित समय पर उपलब्ध कराना।

(6) तैयार एवं कच्चे माल की भंडारण व्यवस्था को ध्यान में रखना।

(7) तैयार माल हेतु बाजार की उपलब्धता।

(8) सरकारी नीतियों एवं कानूनी प्रावधानों को ध्यान में रखना।

(ब) ऋण वितरण के समय समीक्षा

(1) ऋण दस्तावेजों का उचित रूप से निष्पादन करना।

(2) बैंक ऋणों के दुरूपयोग पर ध्यान रखना जैसे—आहरण, सहायक इकाइयों की सहायता, उद्देश्य के अतिरिक्त व्यय करना।

(3) प्रतिभूति के अनुसार प्रभार लगाना।

(4) जमानती के बैंक के प्रति कर्तव्य एवं उत्तरदायित्वों को बताकर ही हस्ताक्षर कराना।

(5) समय-समय पर ऋणी एवं जमानती से बकाया राशि की पुष्टि करना।

(6) प्रतिभूति का मूल्य के आधार पर बीमा कराना।

(7) ऋण की किश्त अतिदेय होने पर ऋणी से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करना तथा ऋण न चुका पाने के कारणों का पता लगाना।

(8) ऋण राशि का वितरण व्यापार के आपूर्तिकर्ताओं को रेखांकित चैक या बैंक ड्राफ्ट द्वारा करना।

(9) खातों की समय-समय पर समीक्षा करना तथा ऋणी को विचलन से अवगत कराना।

(10) जमानत के रूप में रखी गई सम्पत्तियों का समय-समय पर भौतिक सत्यापन एवं मूल्यांकन करना।

(11) उत्पादन शुरू होने के पश्चात व्यवसाय की प्रगति एवं लाभ के आंकड़ों की समीक्षा करना।

(12) ऋण खातों की देखरेख करना कि ऋण समयानुसार वापस हो रहे हैं या नहीं।

(13) कार्यशील पूंजी के लिए दिए गए ऋण खाते का प्रति वर्ष नवीनीकरण करना।

अनर्जक आस्तियों में वृद्धि रोकने एवं पुराने ऋणों की वसूली हेतु उपरोक्त के अतिरिक्त हमें क्षेत्रीय एवं जोनल स्तर पर वसूली प्रकोष्ट की स्थापना तथा शाखा-स्तर पर वसूली अधिकारियों की नियुक्ति करनी होगी जो प्रति माह अनर्जक आस्तियों की वसूली की समीक्षा कर सकें। यदि किसी शाखा में अनर्जक आस्तियां अधिक हैं और वह वित्तीय कठिनाइयों का सामना कर रही हों तो ऐसी शाखाओं का एकीकरण या संविलियन कर, स्थिति से उबारा जा सकता है। पुराने ऋण जिनकी बैंक वसूली नहीं कर पा रहा हो और आस्तियों के मूल्य में कमी आ रही हो तो समझौता प्रस्ताव लागू कर ऋणों की वसूली करनी चाहिए। कुछ शाखाएं ऋण वसूली के लिए संवेदनशील मानी जाती हैं, उनके लिए समयबद्ध वसूली कार्यक्रम एवं समीक्षा की जानी चाहिए। जो लोग समय पर ऋणों का भुगतान नहीं करते हैं एवं अनर्जक आस्तियों की श्रेणी में आ जाते हैं उनके नाम समय-समय पर प्रकाशित किए जाने चाहिए तथा ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण वसूली के लिए मेले एवं प्रदर्शनी का आयोजन समय-समय पर किया जाना चाहिए तथा अंत में बैंकों को ऋण वसूली के लिए कानूनी प्रक्रिया का भी सहारा लेना चाहिए।

उधार देने वाली संस्थाओं में ऋणों के अनर्जक होने की संभावना बराबर बनी रहती है। परंतु अच्छे प्रबंधन के द्वारा हम इसे कम अवश्य कर सकते हैं जो कि आज की महत्वपूर्ण आवश्यकता है ताकि भारतीय बैंकिंग उद्योग वैश्वीकरण के दौर में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धाओं का सामना करने में अपने को सक्षम बना सके तथा आर्थिक सुदृढ़ता एवं लाभदायकता में वृद्धि कर भारतीय अर्थव्यवस्था को नई गति प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकें। ❑

(वरिष्ठ प्रवक्ता, वाणिज्य विभाग, साहू जैन कालेज, नजीबाबाद (बिजनौर), उत्तर प्रदेश।)

भारतीय रिजर्व बैंक : नई ऋण नीति

○ अंजनी भूषण

विश्व अर्थव्यवस्था में पहले से ही व्याप्त मंदी ग्यारह सितंबर को अमेरिका पर हुए हवाई हमलों और पिछले कुछ सप्ताह से जारी अमेरिकी जवाबी हमलों के फलस्वरूप और अस्थिर एवं संकटग्रस्त हो गई है। विश्व बाजार की इस मंदी के दुष्प्रभावों से भारतीय अर्थव्यवस्था को बचाने तथा उसे गति प्रदान करने के लिए 22 अक्तूबर, 2001 को रिजर्व बैंक के गवर्नर बिमल जालान ने चालू वित्त वर्ष की व्यस्त मौसम की मौद्रिक एवं रणनीति में जो उपाय प्रस्तुत किए हैं उन्हें एक 'साहसिक प्रयास' की संज्ञा दी गई है। इन उपायों के तहत बैंक दर में आधा प्रतिशत की कमी और नकद सुरक्षित अनुपात (सी आर आर) में दो प्रतिशत की कमी की घोषणा की गई है ताकि उद्योग-धंधों को कर्ज सस्ती ब्याज दर पर उपलब्ध कराया जा सके और अर्थव्यवस्था में गति लाई जा सके।

बैंक दर वह दर है जिस पर रिजर्व बैंक वाणिज्यिक बैंकों को ऋण प्रदान करता है। यह दर सात प्रतिशत से घटाकर छह प्रतिशत कर दी गई है और नकद सुरक्षित अनुपात साढ़े सात प्रतिशत से घटाकर पांच प्रतिशत कर दिया गया है। सी आर आर में दो प्रतिशत की कमी बैंकिंग क्षेत्र को मौजूदा वित्त वर्ष के अंत तक दस अरब रुपये का लाभ दिलाएगी। साथ ही इस कमी से बैंकिंग तंत्र को आठ हजार करोड़ की अतिरिक्त तरलता हासिल होगी, ऐसा अनुमान है। डाक्टर जालान के अनुसार ये फैसले घरेलू बैंकिंग क्षेत्र में बुनियादी सुधारों की कड़ी के रूप में लिए जाने चाहिए।

आर्थिक वृद्धि दर के अपने पहले के अनुमान में संशोधन करके रिजर्व बैंक ने चालू वर्ष में इसके पांच से छह प्रतिशत के बीच रहने का संकेत दिया है। वर्ष 2001-02 के शुरू में यह दर छह से साढ़े छह प्रतिशत के बीच रहने की उम्मीद व्यक्त की गई थी। वर्ष 2000-01 में यह 5.2 प्रतिशत रही जबकि उससे पहले वर्ष 1999-2000 में यह 6.4 प्रतिशत और उससे भी पहले वर्ष 1998-99 में यह 6.6 प्रतिशत रही थी। रिजर्व बैंक का कहना है कि औद्योगिक क्षेत्र में आई शिथिलता के कारण ऐसा करना आवश्यक हो गया था क्योंकि पेट्रोलियम, कोयला, टेक्सटाइल्स, तंबाकू और खाद्य तेल जैसे प्रमुख क्षेत्रों में ऋण निवेश बढ़ाया नहीं गया। केन्द्रीय सांख्यिकीय संघ के अनुसार औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर अप्रैल-अगस्त के मध्य 2.2 प्रतिशत कम रही। पिछले वर्ष इसी अवधि में यह 5.6 प्रतिशत थी। निर्यात क्षेत्र में भी आंकड़े अनुत्साही रहे। अप्रैल-अगस्त के बीच अमेरिकी डालर के संदर्भ में निर्यात 2.3 प्रतिशत घटा। पिछले वर्ष इसी अवधि में इसमें 21.1 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई थी।

कृषि क्षेत्र में वर्ष 2001-02 के आंकड़े उत्साहजनक माने गए हैं। उत्तर-पूर्वी मानसून सामान्य रहा तो कृषि वृद्धि दर इस वर्ष पिछले वर्ष की तुलना में काफी अधिक रहने का अनुमान लगाया गया है।

सी आर आर दो चरणों में लागू किया जाएगा। पहला चरण 3 नवम्बर, 2001 से लागू हो गया है जबकि इसे घटाकर 5.75 प्रतिशत पर लाया गया है। इससे रिजर्व बैंक में रखी जाने वाली नकदी से बैंकिंग प्रणाली में 6 हजार करोड़ की नकदी छूटेगी। इसके पश्चात 29 दिसम्बर, 2001 से इसे चौथाई प्रतिशत और घटाकर 5.5 प्रतिशत कर दिया जाएगा और इस प्रकार वाणिज्यिक क्षेत्र में आठ हजार करोड़ रुपये की अतिरिक्त नकदी सुलभ हो सकेगी।

ब्याज दर में आधा प्रतिशत की कमी की गई है जो वर्ष 1973 के बाद की सबसे निम्न ब्याज दर है। भारत में ब्याज दरें अमेरिका और जापान आदि देशों के मुकाबले काफी अधिक रही हैं। जापान में यह केवल एक प्रतिशत है। अमेरिका में दो महीने पहले ही फेडरल रिजर्व बैंक ने इसे घटाकर 2.5 प्रतिशत कर दिया था। ब्याज दर कम करने का अर्थ यह है कि वाणिज्यिक बैंक रिजर्व बैंक से सस्ती दर पर ऋण ले सकेंगे और फिर उसे उद्योगों और व्यावसायियों को घटी दर पर उलब्ध करा सकेंगे। इससे अर्थव्यवस्था को मंदी से उबरने में सहायता मिलेगी। संसाधनों की कमी झेलते उद्योग-धंधों में अधिक निवेश राशि आकर्षित हो सकेगी और उद्योगों का विकास/परिष्करण हो सकेगा।

ब्याज दर में आधा प्रतिशत की इस कटौती का एक दुष्परिणाम यह अवश्य होगा कि स्टेट बैंक भी कर्ज और जमा पर ब्याज दरें कम करने का फैसला कर सकता है और इसे 1.5 प्रतिशत से घटाकर 1 प्रतिशत किया जा सकता है। बैंकों में

जमा होने वाली राशि पर इसका विपरीत असर पड़ सकता है और निवेशक दूसरी जगह तलाशने को बाध्य हो सकते हैं।

केन्द्रीय बैंक ने कारोबार के लिए ऋण देने की बैंकों की क्षमता बढ़ाने और बैंक की ऋण लागत कम करने के लिए अपने पास जमा सी आर आर की राशि पर ब्याज दर भी बढ़ा दी है। केन्द्रीय बैंक अब इस राशि पर बैंक के बराबर ब्याज देगा जोकि साढ़े छह प्रतिशत होगी। पहले बैंकों को इस पर छह प्रतिशत ब्याज ही मिल रहा था।

केन्द्रीय बैंक ने वित्तीय प्रणाली को मजबूत करने के उपायों को जारी रखने का संकल्प दोहराया है। बैंक ने वाणिज्यिक बैंको को ग्राहकों को ऋण देने के मामले में लचीला रुख अपनाने की छूट देने का भी फैसला किया है। बैंक सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश पर लाभ कमाने के प्रलोभन को कम करें और कारोबार के लिए ऋण बढ़ाएं, इस उद्देश्य से प्रतिभूमियों में उनके निवेश पर निगरानी कड़ी की जाएगी।

प्रतिक्रिया

देश के शीर्ष वाणिज्य एवं उद्योगमंडलों ने दिल खोलकर इस नीति का स्वागत किया है। उन्होंने यह ताकीद अवश्य की है कि सी आर आर में दो प्रतिशत की कटौती से बैकिंग तंत्र में आने वाली अतिरिक्त राशि का निवेश सरकारी प्रतिभूतियों के बजाए औद्योगिक क्षेत्र में किया जाए। भारतीय वाणिज्य और उद्योग मंडल (फिक्की) का मानना है कि आर्थिक वृद्धि और निवेश मांग को फिर से जिंदा करने के लिए उपयुक्त तरलता उपलब्ध कराने और ब्याज दर के ढांचे में लचीलापन लाने की ताजा घोषणा से आर्थिक मंदी से उबरने में काफी मदद मिलेगी। एसोचेम के अध्यक्ष रघु मोदी संशोधित नीति को सस्ती मुद्रा वाली नीति मानते हैं। उनका यह भी मत है कि इस नीति से रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता की दिशा में आगे बढ़ने में मदद मिलेगी। नीति को अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप बनाते हुए उनका यह भी मानना है कि बैकिंग प्रणाली की मजबूती के लिए संशोधित नीति में कोई उपाय घोषित नहीं किए गए हैं और कमजोर बैंकों के विलय अथवा उनकी मजबूती के उपायों का नीति में अभाव है। श्री मोदी ने विश्वास व्यक्त किया है कि सी आर आर पर बैंकों को मिलने वाली ब्याज दर 6 से बढ़ाकर साढे छह प्रतिशत कर दिए जाने से निवेशकों की जमाराशियों की ब्याज दर से छेड़छाड़ की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

निर्यात ऋण की ब्याज दर में और अधिक कटौती का सुझाव उत्तर भारत के प्रमुख उद्योग मंडल (पीएचडी चेंबर) के अध्यक्ष सुशील अंसल द्वारा दिया गया है।

मुख्य बातें

- बैंक दर आधा प्रतिशत घटाकर सात प्रतिशत से साढ़े छह प्रतिशत की गई। मई 1973 के बाद बैंक दर न्यूनतम स्तर पर।
- नकद सुरक्षित अनुपात (सीआरआर) दो प्रतिशत घटाकर साढ़े सात से साढ़े पांच प्रतिशत। बैकिंग तंत्र को आठ हजार करोड़ रुपये की अतिरिक्त तरलता प्राप्त।
- रिजर्व बैंक ने सीआरआर पर उपलब्ध अधिकांश रियायतें हटाईं।
- रिजर्व बैंक में जमा सीआरआर पर ब्याज दर बढ़ाकर बैंक दर के बराबर यानी साढे छह प्रतिशत की गई।
- चालू वित्त वर्ष के लिए सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर का अनुमान घटाया गया। इसके पांच से छह प्रतिशत के बीच रहने का अनुमान।

उद्योग मंडलों ने रिजर्व बैंक से कर्ज में फंसी राशि (एनपीए) की वसूली के लिए बैकों को और छूट देने का आग्रह किया है। फिक्की ने कहा है कि इस संबंध में एकमुश्त निपटान अवधि बढ़ाई जानी चाहिए और बैंकों को इस मामले में अधिक आजादी दी जानी चाहिए।

रिजर्व बैंक ने स्वीकार किया है कि औद्योगिक मंदी अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में व्यापक रही है। इसके कारण उद्योग क्षेत्र को दिए जाने वाले ऋण में वर्ष की पहली छमाही में ही केवल 6.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई, अर्थात 31,104 करोड़ रुपये दिए गए जबकि पिछले वर्ष इसी अवधि में यह प्रतिशत 9.7, अर्थात 42,211 करोड़ रुपये था। अन्य क्षेत्रों में निवेश अनाकर्षक होने से अनुसूचित वाणिज्यिक बैकों की औसत जमाराशि में 9.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई (87,895 करोड़ रुपये) जबकि पिछले वर्ष इसी दौरान यह प्रतिशत 8.9 (72,687 करोड़ रुपये) था। जमा राशि यूं ही बढ़ती जाती तो बैकिंग प्रणाली में संसाधनों के इस्तेमाल में असंतुलन उत्पन्न होने का खतरा था।

जैसाकि वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा ने हाल ही में कहा था "ब्याज दर ऐसी कोई जादू की छड़ी नहीं है जिससे आर्थिक वृद्धि दर तेज की जा सके।" तथापि रिजर्व बैंक द्वारा घोषित नई रणनीति से यह उम्मीद अवश्य की जा सकती है कि यह अर्थव्यवस्था में चौतरफा संतुलन कायम करने में कामयाब सिद्ध होगी। ❑

भारत में निजी निगमित क्षेत्र

○ रवीन्द्र त्रिपाठी

निजी क्षेत्र का आशय उत्पादन ढांचे के उस भाग से है जिसमें उत्पादन साधनों और उत्पादन प्रक्रम का स्वामित्व और प्रबंध निजी हाथों में होता है। अब घरेलू बाजार विदेशी उद्यमियों के लिए खुल चुका है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों और विदेशी उत्पादकों के सामान घरेलू बाजार में सहज उपलब्ध हो रहे हैं। अतः घरेलू निजी निगमित क्षेत्र को वस्तुओं के गुणवत्ता उन्नयन और उत्पादन लागत की कमी के प्रति सचेष्ट होना होगा, ऐसा लेखक का मत है।

निजी क्षेत्र का आशय उत्पादन व्यवस्था में निजी उद्यमों और व्यवसायों की समष्टि से है। यह पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्था का अविभाज्य घटक है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि निजी क्षेत्र का आशय उत्पादन ढांचे के उस भाग से है जिसमें उत्पादन साधनों और उत्पादन प्रक्रम का स्वामित्व और प्रबंध निजी हाथों में होता है। निजी क्षेत्र की समष्टि में वैयक्तिक, साझीदारी एवं निजी निगमित क्षेत्र के उद्यम एवं व्यवसाय सम्मिलित हैं। उद्यमिता, पहल और लाभार्जन इस क्षेत्र की प्रमुख विशेषताएं हैं। नैतिक स्वहित निजी क्षेत्र की क्रियाविधि का प्रेरक होता है। पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली की प्रारंभिक दशा में 18वीं और 19वीं शताब्दी में निजी क्षेत्र की उत्पादन इकाइयों का आकार अत्यंत छोटा था और उनका स्वामित्व तथा प्रबंध एकाकी उद्यमियों अथवा उनके एक छोटे समूह द्वारा किया जाता था। इस प्रकार उस समय एकाकी उद्यम और साझेदारी व्यवस्था चलन में थी। निजी क्षेत्र राजकीय हस्तक्षेप से मुक्त था और इनमें परस्पर प्रतियोगिता होती थी।

व्यवसाय संगठन में 'कंपनी' व 'कार्पोरेट' उत्पादन प्रणाली का विकास औद्योगिक परिदृश्य की एक नवीन प्रवृत्ति है। इसे निजी निगमित उत्पादन प्रणाली कहा जाता है। निगमित क्षेत्र में सार्वजनिक, निजी एवं बहुराष्ट्रीय उद्यम सम्मिलित हैं। निजी निगमित उत्पादन प्रारूप आरंभिक निजी क्षेत्र से इस आशय में भिन्न है कि निजी क्षेत्र के कंपनी व कार्पोरेट प्रारूप में संगठन का स्वामित्व अंशधारियों के हाथ में होता है और उसका प्रबंध विशेषज्ञ लोगों द्वारा कराया जाता है। प्रबंधकीय विशेषज्ञों का उद्देश्य उचित लाभार्जन के साथ व्यवसाय के आकार को बढ़ाना, ऊंची संवृद्धि दर प्राप्त करना, सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह एवं बिक्री आय को अधिकतम करना होता है। आर्थिक क्रियाओं में अहस्तक्षेप की नीति के कारण विश्व के लगभग सभी देशों में निजी क्षेत्र का प्रसार हुआ। औद्योगिक इकाइयों के आकार में भी परिवर्तन आया। अब निजी निगमित क्षेत्र की इकाइयां मूलतः अंशधारियों के स्वामित्व में होती हैं और इनका प्रबंधन तकनीकी प्रबंधकों द्वारा किया जाता है। प्रबंधकों का दृष्टिकोण केवल लाभ को अधिकतम करने में नहीं अपितु बिक्री एवं व्यवसाय को बढ़ाने, सामाजिक चेतना जागृत करने और सामाजिक कल्याण को भी अधिकतम करने में निहित है।

भारत में बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों तक लगभग सभी उत्पादन और व्यावसायिक क्रियाएं निजी क्षेत्र की सीमा में आती थीं। परंतु निजी क्षेत्र की विसंगति के कारण कालान्तर में इसकी व्यापकता में कमी आई। क्रमशः उत्पादन क्रियाओं में सार्वजनिक क्षेत्र का समावेश हुआ। तथापि प्रतिरक्षा उत्पादन, सिचांई, पोस्ट एवं टेलीग्राफ, रेलवे तथा बंदरगाहों को छोड़कर अन्य सभी कार्य निजी क्षेत्र द्वारा ही पूरे किए जाते थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद निजी और सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को औद्योगिक नीति प्रस्तावों में पृथक-पृथक रेखांकित किया गया।

भारत में 1948 में घोषित औद्योगिक नीति में मिश्रित अर्थव्यवस्था की परिकल्पना अंगीकृत की गई। औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 और औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 के अनुसार भारी और मूल उद्योगों के विकास, अवस्थापनागत सुविधाओं के विकास तथा जनोपयोगी सेवा उद्योगों के विकास का दायित्व सार्वजनिक क्षेत्र को सौंपा गया। इसी प्रकार नागरिक उड्डयन, बंदरगाह, रेलवे आदि का विकास दायित्व सार्वजनिक क्षेत्र को दिया गया। दूसरी ओर उपभोक्ता वस्तुओं, खुदरा व्यापार, लघु एवं कुटीर उद्योग, कृषि एवं संबद्ध क्रियाएं, विदेशी व्यापार आदि कार्य निजी उद्यम के कार्यक्षेत्र में रखे गए। औद्योगिक नीति, 1956, जिसे भारत का आर्थिक संविधान कहा जाता है, में उद्योगों को 3 वर्गों में विभक्त किया गया। इसमें 'अ' अनुसूची के उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित रखे गए। अनुसूची 'ब' में उन 12 उद्योगों को सम्मिलित किया गया जिसकी स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र में होगी और इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र की सहायक भूमिका होगी। अनुसूची 'स' के सभी उद्योगों की स्थापना और विकास का दायित्व निजी क्षेत्र को सौंपा गया।

भूमिका

1948 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में यह स्पष्ट किया गया कि निजी क्षेत्र का एक सार्वजनिक उद्देश्य है। इस आशय की पुष्टि प्रथम पंचवर्षीय योजना रिपोर्ट में भी की गई। यह उल्लेख किया गया कि वर्तमान संदर्भ में पूर्णतया अनियंत्रित और स्वतंत्र निजी उद्यम जैसी कोई चीज नहीं है। निजी क्षेत्र का राज्य द्वारा निर्धारित दशाओं में कार्य करना है। सार्वजनिक और निजी क्षेत्र को अलग-अलग रूपों में नहीं देखा जा सकता। वे एक ही समवाय के अंग हैं और उन्हें इसी प्रकार कार्य करना चाहिए। इस प्रकार नैतिक स्वहित के साथ-साथ अब निजी क्षेत्र को सामाजिक उत्तरदायित्व भी वहन करना है। सरकार समष्टि आर्थिक नीति द्वारा निजी क्षेत्र को निर्देशित और मर्यादित करती है ताकि वे सामाजिक दायित्व वहन कर सके।

निजी क्षेत्र में विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओं और मध्यवर्ती वस्तुओं के उद्योग हैं। निजी क्षेत्र की संरचना में सूती, ऊनी, रेशमी और कृत्रिम धागों के वस्त्र, वार्निश, प्लास्टिक, विद्युत उपकरण, लोहा एवं इस्पात, घरेलू उपकरण, सीमेंट, अल्यूमीनियम आदि के उद्योगों का समावेश है। उपभोक्ता-वस्तु उद्योगों की व्यापक श्रृंखला निजी क्षेत्र में है। लघु एवं कुटीर उद्योग क्षेत्र तो निजी क्षेत्र के लिए ही सुरक्षित हैं। कृषि एवं संबद्ध क्रियाओं, बड़े और मध्यम उद्योग, लघु उद्योग, व्यापार, होटल, रेस्टोरेन्ट, खनन आदि क्रियाओं में निजी क्षेत्र का वर्चस्व बना है। कृषि का तो लगभग संपूर्ण क्रियान्वयन और स्वामित्व निजी क्षेत्र में है। समग्र कृषि उत्पादन में निजी क्षेत्र का योगदान लगभग 97 प्रतिशत है। व्यापार, होटल, यातायात में निजी क्षेत्र की ही प्रमुखता है। निर्माण और विनिर्माण क्षेत्र में यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र का समावेश बढ़ा है तथापि इनमें भी निजी क्षेत्र का अंश लगभग 85 प्रतिशत है। निजी क्षेत्र की संरचना में निजी संगठित क्षेत्र और निजी असंगठित क्षेत्र सम्मिलित हैं। निजी क्षेत्र की प्रत्येक आर्थिक क्रिया को इन दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। संगठित निजी क्षेत्र को सामान्यत: निजी निगमित क्षेत्र भी कहा जाता है। वर्तमान संदर्भ में जिस रूप में निजी क्षेत्र पर विचार किया जाता है, वह निजी निगमित क्षेत्र होता है। योजनाकाल में निजी क्षेत्र में नवीनीकरण हुआ है और इसके अवयवों में प्रगति हुई हैं।

भारत में निजी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख क्षेत्र है। निजी क्षेत्र में औद्योगिक इकाइयों की संख्या कुल औद्योगिक इकाइयों का लगभग 9.12 प्रतिशत भाग है। सार्वजनिक और संयुक्त क्षेत्र में कुल 8.8 प्रतिशत औद्योगिक इकाइयां हैं। देश में औद्योगिक इकाइयों की कुल संख्या लगभग 1.85 लाख है। इनमें से लगभग 1.22 लाख औद्योगिक इकाइयां निजी क्षेत्र में हैं। इससे स्पष्ट है कि देश का निजी निगमित क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। योजनाकाल में संपूर्ण संगठित क्षेत्र में रोजगार अवसरों में वृद्धि हुई है। संगठित निजी क्षेत्र में 1961 में 50 लाख 60 हजार लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ था जो 1991 में बढ़कर 70 लाख 90 हजार और 1999 में 80 लाख 70 हजार

तालिका-1

संगठित क्षेत्र में रोजगार

(मिलियन में)

वर्ष	सार्वजनिक क्षेत्र	निजी क्षेत्र	योग	कुल संगठित रोजगार में निजी क्षेत्र का अंश
1961	7.1	5.6	12.7	44.0
1971	10.7	6.7	17.4	38.5
1981	15.5	7.4	22.9	32.3
1991	19.1	7.9	26.9	29.3
1999	19.4	8.7	28.1	31.0

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2000-2001

मिलियन हो गया। भारत की आर्थिक नीति में परिवर्तन से अब निजी क्षेत्र में विकास की संभावानाएं बढ़ी हैं। इससे रोजगार अवसर भी अपेक्षाकृत बढ़ रहे हैं। इसके परिणाम भी सामने आने लगे हैं। तालिका-1 से स्पष्ट है कि 1991-99 की अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार वृद्धि अत्यन्त कम रही। इस अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र की तुलना में निजी क्षेत्र में रोजगार अवसर अधिक बढ़े। कुल संगठित क्षेत्र के रोजगार अवसरों में निजी क्षेत्र का सापेक्षित अंश भी बढ़ने लगा है।

निजी क्षेत्र की क्रियाशीलता में विभिन्न आर्थिक क्रियाएं सम्मिलित हैं परंतु इनकी क्रियाशीलता कुछ आर्थिक क्रियाओं में अपेक्षाकृत अधिक है। दूसरी ओर कुछ आर्थिक क्रियाओं में इनका महत्व घटा भी है। उदाहरण के लिए खनन और खदान के क्षेत्र में संगठित निजी क्षेत्र में 1971 में लगभग 4.1 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ जो क्रमश: घटकर 1999 में लगभग 0.9 लाख हो गया। दूसरी ओर विनिर्माण तथा निर्माण, वित्त एवं जायदाद, एवं सामुदायिक तथा सामाजिक सेवाओं में इनका अंश बढ़ा है। विनिर्माण कार्यों में निजी संगठित क्षेत्र में 1971 में 39.6 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ था जो 1999 में बढ़कर 51.8 लाख हो गया। तालिका-2 में विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में निजी संगठित क्षेत्र में रोजगार का विवरण दिया गया है।

बचत और पूंजी निर्माण अर्थव्यवस्था में सामर्थ्य सृजित करते हैं; उत्पादन आधार सुदृढ़ करते हैं। यदि सकल घरेलू बचत और सकल घरेलू पूंजी निर्माण की दृष्टि से विचार किया जाए तो

तालिका-2

निजी संगठित क्षेत्र में रोजगार

(लाख में)

क्षेत्र	1971	1981	1999
कृषि एवं संबद्ध क्रियाएं	8.0	8.6	8.7
खनन एवं खदान	4.1	1.3	0.9
विनिर्माण	39.5	45.5	51.8
विद्युत, गैस एवं जल	0.5	0.4	0.4
निर्माण	1.4	0.6	0.7
व्यापार एवं होटल	3.5	2.8	3.2
परिवहन, संग्रह एवं संचार	1.0	0.6	0.7
वित्त, जायदाद	1.5	2.0	3.6
सामुदायिक एवं सामाजिक सेवाएं	8.5	12.2	17.0
योग	68.0	74.0	87.0

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2000-2001

निजी संगठित क्षेत्र का महत्व और व्यापकता स्पष्ट होती है। अर्थव्यवस्था में बचतों में निरपेक्ष वृद्धि हुई है। 1950-51 में बाजार कीमतों पर कुल घरेलू बचत सकल घरेलू उत्पाद का 8.9 प्रतिशत थी जो बढ़कर 1995-96 में 25.1 प्रतिशत हो गई। इसके बाद कुल घरेलू बचत में कमी आई और 1999-2000 में यह सकल घरेलू उत्पाद का 22.3 प्रतिशत रही। कुल घरेलू बचत में संगठित निजी क्षेत्र का भी अंश बढ़ा है। कुल घरेलू बचत में संगठित निजी क्षेत्र का अंश 0.9 प्रतिशत था जो 1995-96 मे 4.9 प्रतिशत हो गया। वर्ष 1991-2000 में घरेलू बचत में संगठित निजी क्षेत्र का अंश 3.7 प्रतिशत था। इस प्रकार संगठित निजी क्षेत्र ने पूंजी निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान किया है।

नीति

औपनिवेशिक शासनकाल में घरेलू निजी क्षेत्र के प्रति सरकार की नीति सर्वथा नकारात्मक रही। ब्रिटिश सरकार का हित भारतीय अर्थव्यवस्था को बाजार बनाए रखने में था। सामान्य उपभोग की वस्तुएं भी आयात की जाती थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद घरेलू निजी क्षेत्र का विकास अपरिहार्य माना गया। निजी क्षेत्र को विकसित करने के लिए सरकार ने इनके प्रति प्रोत्साहनात्मक और नियमनात्मक नीति अपनाई। प्रोत्साहनात्मक माध्यमों के अंतर्गत निजी क्षेत्र को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए साख सुविधा की व्यापक शृंखला तैयार की गई। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, नाबार्ड, राज्य वित्त निगम आदि, संस्थाओं ने निजी क्षेत्र को साख उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी प्रकार निजी क्षेत्र के लिए प्रौद्योगिकी और कच्चा माल उपलब्ध कराने में भी इन संस्थाओं ने पर्याप्त योगदान किया। इन संस्थाओं की सहायता से निजी क्षेत्र में औद्योगिक इकाइयों और उद्यमियों का समावेश हुआ।

भारत का निजी क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। देश की अधिकांश गतिविधियां निजी क्षेत्र में हैं। परंतु देश का निजी क्षेत्र सर्वथा मुक्त रूप से मनचाही दिशा में कार्य करने को मुक्त नहीं है। निजी क्षेत्र की गतिविधि योजनाओं के उद्देश्य और विकासयुक्ति से संगत होनी चाहिए। निजी क्षेत्र को वस्तुत: आयोजन का अंग बना लिया गया है। निजी क्षेत्र के लिए विविध नियामक प्रावधान हैं ताकि वे योजना में निर्धारित प्राथमिकताओं के अनुसार कार्य कर सकें। अपेक्षा यह है कि इससे वे राष्ट्रीय जरूरतों को पूरा करने में सहायक हों। उद्योग (विकास तथा

नियमन) अधिनियम 1951 पारित होने से नवीन उद्योगों की स्थापना, नवीन वस्तुओं का उत्पादन, उत्पादन विस्तार आदि के लिए लाइसेंस प्रदान करने का अधिकार सरकार को प्राप्त हो गया। इस अधिनियम के अनुसार सरकार प्रतिष्ठान के प्रबंध और नियंत्रण को अव्यवस्था की दशा में अधिग्रहीत कर सकती है। इसी क्रम में वस्तुओं का न्यायोचित वितरण कराने और उचित कीमत बनाए रखने के लिए कार्यवाही कर सकती है। आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण, अनुचित व्यापार व्यवहार और प्रतिरोधक व्यापार व्यवहार को रोकने के लिए 1969 में एकाधिकार एवं प्रतिरोधक व्यापार-व्यवहार अधिनियम पारित किया गया। भारतीय कंपनी अधिनियम 1956 भी निजी क्षेत्र के लिए नियामक उपबंधों की व्यवस्था करता है। इसी प्रकार औद्योगिक लाइसेंस नीति 1970 में भी निजी क्षेत्र के लिए नियामक उपबंधों की व्यवस्था की गई।

भारत की आर्थिक नीति स्वतंत्रता के पश्चात, विशेषकर नियोजन काल में नियमन, नियंत्रण और संरक्षण की रही। यह सोचा गया था कि नियंत्रण की क्रियाविधि द्वारा राष्ट्रीय जरूतरों के अनुरूप औद्योगिक विकास होगा। उद्योगों का समान क्षेत्रीय वितरण होगा और आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण रुकेगा। परंतु कालक्रम में यह अनुभव किया गया कि प्रशासनिक बाधाओं, उद्योग में फर्मों के प्रवेश पर रोक, विदेशी प्रतियोगिता पर रोक, अप्रचलित और पुरानी तकनीकों के प्रयोग, आदि तत्वों के कारण औद्योगिक विकास उचित स्तर तक नहीं हो सका। इन विभिन्न विसंगतियों के निदान हेतु सरकार ने जून 1991 में नवीन औद्योगिक नीति घोषित की। इसमें उदारीकरण को अधिक प्रोत्साहित किया गया। नवीन आर्थिक नीति का उद्देश्य अर्थव्यवस्था में उत्पादिता वृद्धि, उत्पादक रोजगार को बढ़ावा देना तथा उद्योगों में सार्वत्रिक प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्ति को बढ़ावा देना था।

नवीन आर्थिक नीति के क्रियान्वयन में औद्योगिक क्षेत्र को लगातार बंधनमुक्त करने और उसे प्रतियोगी बनाने का प्रयास किया जा रहा है। इसी क्रम में औद्योगिक क्षेत्र को सक्षम बनाने के लिए इसमें नवीनीकरण अपेक्षित है। इस कारण नवीन आर्थिक नीति का एक प्रमुख तत्व उद्योगों में नवीनीकरण प्रक्रिया को प्रोत्साहित करना है। आधुनिकीकरण की आवश्यकता न केवल निजी क्षेत्र अपितु सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में भी है। इस अपेक्षा की पूर्ति के लिए उच्च प्रौद्योगिकी आयात को उदार किया गया। नवीन आर्थिक नीति का सर्वप्रमुख घटक निजी क्षेत्र को अधिक महत्व देना है। अब निजी क्षेत्र का प्रसार उन क्षेत्रों में भी किया जा रहा है जिनमें अब तक इनकी क्रियाशीलता नहीं थी। कई राजकीय उद्यमों में भी निजी क्षेत्र की सहभागिता स्वीकार की गई है। निजी क्षेत्र के प्रति यह दृष्टिकोण वस्तुत: सार्वजनिक क्षेत्र के अल्प निष्पादन का परिणाम है। नियोजन के आरंभ से ही सार्वजनिक क्षेत्र का प्रसार ऐसी क्रियाओं में भी हुआ जो पहले निजी क्षेत्र के लिए आबंटित थीं, यथा, होटल, बेकरी, हस्तशिल्प, आदि। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए लगातार विनियोग की मात्रा बढ़ाई गई। इस विनियोग राशि पर प्रतिफल की दर अत्यंत नीची रही। कई औद्योगिक प्रतिष्ठान लगातार घाटे पर बने रहे। एक सामान्य धारणा बन गई कि सार्वजनिक क्षेत्र अपने उद्यमों की सम्यक् व्यवस्था नहीं कर सका है। इसलिए निजी क्षेत्र को उचित भूमिका दी जानी चाहिए। अत: अब निजी क्षेत्र को अधिक भूमिका दी जा रही है। कई महत्वपूर्ण क्षेत्रों यथा विद्युत उत्पादन, परिवहन, उर्वरक, इस्पात और पेट्रोलियम उत्पादन, सूचना प्रौद्योगिकी, आदि में भी निजी क्षेत्र का समावेश बढ़ रहा है। यह प्रयास किया जा रहा है कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के मध्य प्रतिस्पर्धा बढ़े, पूंजी उत्पादन अनुपात अनुकूल बने, औद्योगिक प्रतिष्ठान उपभोक्ताओं की आकांक्षा संतुष्ट करने वाले बनें तथा भारतीय उद्योग अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा करने योग्य बनें। अत: अब निजी क्षेत्र का समावेश उन उद्योगों में भी होने लगा है जो 1956 की औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आबंटित कर दिए गए थे।

यह प्रयास किया जा रहा है कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के मध्य प्रतिस्पर्धा बढ़े, पूंजी उत्पादन अनुपात अनुकूल बने, औद्योगिक प्रतिष्ठान उपभोक्ताओं की आकांक्षा संतुष्ट करने वाले बनें तथा भारतीय उद्योग अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा करने योग्य बनें।

निजी क्षेत्र के प्रति परिवर्तित नीति के सकारात्मक परिणाम उत्पन्न हुए हैं। औद्योगिक गतिविधि में निजी क्षेत्र का योगदान बढ़ा है। यह अनुमान है कि 1991-99 की अवधि में लगभग 40.6 हजार नवीन औद्योगिक इकाइयों की स्थापना हुई। निर्विवाद रूप से नवीन आर्थिक नीति के क्रियान्वयन से संगठित निजी क्षेत्र की गतिविधि बढ़ी है; उद्यमियों में नवीनीकरण और प्रौद्योगिकी उन्नयन के प्रति दृढ़ इच्छाशक्ति बनी है; कार्य के प्रति तत्परता बढ़ी है। औद्योगिक विवादों में कमी आई है। हड़ताल और तालाबंदी के कारण 1999 में कुल 26.8 मिलियन कार्यदिनों की

क्षति हुई थी जो वर्ष 2000 में घटकर 11.1 मिलियन हो गई। श्रम संबंधों में सुधार प्रगति का प्रमुख घटक है।

चुनौतियां

भारत के लिए रोजगार वृद्धि का प्रश्न सर्वोपरि है। रोजगार अवसरों का सृजन सामाजिक और राष्ट्रीय अनिवार्यता है। विकास प्रक्रिया में उत्पादन वृद्धि के साथ रोजगार वृद्धि दर बढ़नी ही चाहिए। रोजगार वृद्धि के मोर्चे पर हाल के वर्षों में संगठित निजी क्षेत्र असफल रहा है। संगठित निजी क्षेत्र में 1998 में कुल 87.48 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ था। यह 1999 में घटकर 86.98 लाख हो गया। रोजगार-रहित आर्थिक वृद्धि निरर्थक होंगी। अत: संगठित निजी क्षेत्र को रोजगार वृद्धि के साथ उत्पादन वृद्धि की दशाएं बनानी होंगी। अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की प्रधानता के कारण आर्थिक शक्ति का अत्यधिक केन्द्रीकरण हुआ है। इस संकेन्द्रण लोगों के हित में बाधक है। आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण उत्पादन वृद्धि को नहीं अपितु लाभ वृद्धि को प्रोत्साहित करता है। इसके संकेन्द्रण के कारण अधिकांश जनसमुदाय गरीबी का जीवन व्यतीत कर रहा है।

औद्योगिक क्षेत्र की बढ़ती रुग्णता निजी क्षेत्र के लिए अत्यंत प्रमुख समस्या बनी है। औद्योगिक इकाइयों में लगातार होने वाली हानियां, चालू देनदारियों को पूरा करने में असमर्थता, परिसम्पत्तियों में लगातार कमी, आदि इसके प्रमुख लक्षण हैं। औद्योगिक रुग्णता के परिणामस्वरूप उत्पादन में कमी, क्षमता का अल्प उपयोग, राष्ट्रीय संसाधनों की बर्बादी, आदि दुष्परिणाम होते हैं। मार्च 1999 में समस्त रुग्ण एवं कमजोर औद्योगिक इकाइयों की संख्या 3,09,013 थी। इसमें से 3,06,221 लघु औद्योगिक इकाइयां थी जो मुख्यत: निजी क्षेत्र में हैं। इसी प्रकार गैर-लघु उद्योग क्षेत्र में भी निजी क्षेत्र की 2363 इकाइयां रुग्ण एवं कमजोर थी। इस प्रकार औद्योगिक रुग्णता की समस्या निजी क्षेत्र में अत्यंत व्यापक है। औद्योगिक रुग्णता के लिए दोषपूर्ण नियोजन, प्रबंध की कमजोरियां, अकुशल वित्तीय नियंत्रण, पुरानी टेक्नोलाजी और मशीनों का प्रयोग, खराब औद्योगिक संबंध, उत्पादनों की मांग में कमी, कच्चे पदार्थ की कमी, आदि तत्व उत्तरदायी रहे हैं।

निजी क्षेत्र के उद्यम प्राकृतिक संसाधनों का अत्यंत निर्दयतापूर्वक विदोहन करते हैं। इससे पारिस्थितिक असंतुलन की संभावना अधिक तेजी से बढ़ रही है। इन उद्यमों की क्रियाविधि अर्थव्यवस्था में उपभोगवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रही है। समाज के उपभोग का ढांचा समाज में विद्यमान सामाजिक विषमता को अधिक जटिल बना रहा है। निजी उद्यम अपने उत्पादन की मांग बढ़ाने के लिए अत्यधिक बिक्री-व्ययों, विज्ञापन आदि प्रचार माध्यमों पर होने वाले व्ययों का प्रयोग करते हैं जिसका प्रभाव अंतत: कीमत वृद्धि के रूप में उपभोक्ताओं पर पड़ता है।

अब घरेलू बाजार विदेशी उद्यमियों के लिए खुल चुका है। विदेशी पूंजी के अंतर्प्रवाह को बढ़ाने के लिए अब तक कई सकारात्मक दशाएं सृजित की जा चुकी हैं। अब एक संक्षिप्त नकारात्मक सूची को छोड़कर अन्य सभी मदों के लिए प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग के लिए स्वत: अनुमोदन का मार्ग खोल दिया गया है। कुछ विशिष्ट दशाओं के साथ ई कामर्स हेतु 100 प्रतिशत विदेशी पूंजी के अंर्तप्रवाह की अनुमति दी गई है। विद्युत उत्पादन, पारेषण और वितरण में 100 प्रतिशत समता पूंजी की अनुमति दी गई है। इस संदर्भ में पहले 1500 करोड़ रुपये की ऊपरी सीमा निर्धारित की गई थी। अब उसे भी समाप्त कर दिया गया है। तेलशोधन क्षेत्र में विदेशी पूंजी के अंर्तप्रवाह को बढ़ाने के लिए इस क्षेत्र में भी 100 प्रतिशत विदेशी पूंजी स्वत: अनुमोदन मार्ग से आने की अनुमति दी गई है। विशेष आर्थिक क्षेत्र में (कुछ अपवादों सहित) सभी निर्माण क्रियाओं में 100 प्रतिशत विदेशी पूंजी समावेश की अनुमति प्रदान की गई है। बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण से लाइसेंस मिलने पर बीमा क्षेत्र में भी 26 प्रतिशत समता अंश पूंजी आ सकती है। दूरसंचार के क्षेत्र में कतिपय कार्यों के लिए 100 प्रतिशत समता पूंजी प्राप्त की जा सकती है। सूचना प्रौद्योगिकी में विदेशी पूंजी का अंर्तप्रवाह सुगम बनाया गया है। इस प्रकार संगठित निजी क्षेत्र के लिए अब चुनौती गंभीर है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों और विदेशी उत्पादकों के सामान घरेलू बाजार में सहज उपलब्ध हो रहे हैं। कई उपभोक्ता-वस्तुओं के संदर्भ में डम्पिंग की दशाएं भी उत्पन्न हो रही हैं। अत: घरेलू निजी निगमित क्षेत्र को वस्तुओं के गुणवत्ता उन्नयन और उत्पादन लागत की कमी के प्रति सचेष्ट होना होगा। साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि निजी क्षेत्र के संगठित उद्यम शोध और अन्वेषण पर भी विशेष ध्यान दें। अन्यथा एक ओर तो भारतीय बाजार विदेशी वस्तुओं से भरेगा और दूसरी ओर प्रौद्योगिकी आयात के लिए भारी कीमत देनी होगी। बौद्धिक संपदा अब व्यापार का घटक है और बौद्धिक संपदा-आयात के लिए निजी उद्यमियों को रायल्टी का भुगतान करना होगा। अब सस्ता न बिकेगा। अब सर्वोत्तम की बिक्री करने और बनाने के लिए निजी क्षेत्र को आगे आना होगा। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

शहरी गरीबों को आसरा देगी 'वाल्मीकि-अम्बेडकर आवास योजना'

○ अनन्त मित्तल

वाल्मीकि-अंबेडकर आवास योजना के तहत दसवीं पंचवर्षीय योजना के कार्यकाल में पूरे पांच वर्ष के दौरान कुल 10,000 करोड़ यानी एक खरब रुपये खर्च किए जाने का प्रावधान किया गया है। इस राशि से पूरे योजनाकाल में देशभर में कम से कम 20 लाख अत्यंत गरीब परिवारों को पक्का मकान उपलब्ध कराने का लक्ष्य घोषित किया गया है।

वाल्मीकि-अंबेडकर आवास योजना गरीबों के प्रति राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) सरकार के साझे कार्यक्रम के अनुरूप ही घोषित की गई है। यह योजना भी स्वतंत्रता दिवस पर प्रधानमंत्री द्वारा घोषित ग्रामीण रोजगार सहायता योजना की तरह ही बड़े बजट वाली और दूरगामी परिणामों को सोचकर बनाई गई है।

वाल्मीकि अंबेडकर आवास योजना के तहत दसवीं पंचवर्षीय योजना के कार्यकाल में पूरे पांच वर्ष के दौरान कुल 10,000 करोड़ यानी एक खरब रुपये खर्च किए जाने का प्रावधान किया गया है। इसके अंतर्गत शहरी गरीबों को मकान बनाने के लिए इसमें से आधी राशि यानी 5,000 करोड़ रुपये सब्सिडी की शक्ल में और बाकी 5,000 करोड़ रुपये बतौर कर्ज दिए जाएंगे। इस राशि से पूरे योजनाकाल में देशभर में कम से कम 20 लाख अत्यंत गरीब परिवारों को पक्का मकान उपलब्ध कराए जाने का घोषित लक्ष्य है।

केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा 23 अक्तूबर, 2001 को मंजूर की गई इस योजना को दसवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान देशभर में कुल 5161 शहरों एवं कस्बों में लागू करने का संकल्प जताया गया है। योजना के खाके के अनुसार इसमें से हर साल 1,000 करोड़ रुपये शहरी गरीबों को पक्का मकान बनाने के लिए सब्सिडी के तौर पर और उसी के साथ 1,000 करोड़ रुपये सालाना कर्ज के तौर पर दिए जाएंगे। फिलहाल इस योजना को चालू वित्त वर्ष में ही चुनींदा शहरों और कस्बों में शुरू कर दिया जाएगा और उसके बाद धीरे-धीरे इसे देश भर में फैलाया जाएगा।

इस योजना के प्रारूप के मुताबिक दसवीं योजनावधि में वाल्मीकि अंबेडकर आवास योजना के तहत पहले से चल रही शहरी गरीबों की आवास योजनाओं को शामिल कर दिया जाएगा ताकि उसका दायरा विस्तृत हो सके। ये योजनाएं हैं: राष्ट्रीय स्लम विकास कार्यक्रम (एनएसडीपी) और रैन बसेरा योजना (एनएसएस)। वाल्मीकि अंबेडकर आवास योजना को लागू करने में केंद्र सरकार ने शहरी आवास एवं विकास निगम (हडको) को प्रमुख भूमिका सौंपी है। केंद्र से हर साल इस मद में 1,000 करोड़ रुपये हडको को मिलेंगे, जिसके बराबर राशि वह कर्ज के तौर पर राज्य सरकारों को अपने पास से मुहैया कराएगा और सब्सिडी के सदुपयोग की निगरानी तथा कर्ज की राशि की वसूली का जिम्मा भी राज्य सरकार के सहयोग से हडको पर ही रहेगा। इस राशि से हर साल कम से कम चार लाख अति गरीब शहरी परिवारों को पक्की छत मुहैया कराने की मंशा है।

गौरतलब है कि शहरों और कस्बों में भी गरीबों के आवास की गंभीर समस्या मुंह बाएं खड़ी हैं। समय के साथ-साथ यह समस्या और विकराल होती जा रही है। गांवों में रोजगार के सिमटते दायरे और शहरों में लगातार बढ़ती आबादी, अमीरी और उससे जुड़े कारोबार के

नए-नए रूपों से शहरों में रोजगार के बढ़ते मौकों को तलाशती गरीब आबादी का बड़े पैमाने पर गांवों से शहरों की तरफ पलायन हो रहा है। लेकिन शहरों में महंगी जमीन और मकान बनाने के अन्य उपादानों की बढ़ती लागत के कारण गरीबों को सर पर छत नसीब नहीं हो पाती। इसके कारण उन्हें अक्सर शहरी मोहल्लों के बीचों-बीच उपलब्ध खुली जगहों, मसलन पार्क, सार्वजनिक शौचालयों तथा फुटपाथ आदि के आसपास झुग्गियां बना कर गंदगी और गुरबत के बीच जीना पड़ता है। इसके बावजूद वे हमेशा उन कालोनियों के निवासियों की आंख का कांटा बने रहते हैं जहां वे अपना डेरा जमाते हैं, हालांकि वे काम उन्हीं लोगों के आते हैं। मसलन उनकी बीवियां कालोनी के घरों में बरतन मांज कर और झाड़ू पोछा लगाने से लेकर कपड़े धोने, खाना पकाने तथा बच्चे पालने तक तरह-तरह के ऐसे काम करती हैं जिन्हें करने की उन घरों की महिलाओं के पास ज्यादातर न तो फुर्सत है और न ही इच्छा। इन गरीब परिवारों के मर्द उन्हीं कालोनियों में रिक्शा खींचने से लेकर फेरी लगाकर सब्जी बेचने, साइकिल रिपेयर की थड़ी लगाने, चौकीदारी करने और ऐसे ही तमाम काम करते हैं जो उन कालोनियों के लोगों के जीवन-स्तर और सुरक्षा को बरकरार रखने में सीधे मदद करते हैं।

इसके बावजूद इन गरीबों के इस सामाजिक दायित्व को पूरी तरह नजरअंदाज करके समाज पर बोझ माना जाता है। इनसे सेवा तो हरेक लेना चाहता है लेकिन इनकी सामाजिक जरूरतें कोई नहीं पूरी करना चाहता। अमूमन उन इलाकों के स्थानीय निकाय और सरकारी एजेंसियां भी उन्हें बसाने और उस बसावट की देखभाल करने में अपनी हेठी मानती हैं। इन गरीबों की याद अमूमन चुनाव के मौकों पर ही आती है और वोटों की फसल काटने के बाद उन्हें फिर भुला दिया जाता है। इतना ही नहीं, स्थानीय निवासियों का दबाव ज्यादा बढ़ने पर अंततः इनकी बस्तियों को कालोनियों से उजाड़ कर शहरों की सीमाओं पर ऐसे बियाबान में पटक दिया जाता है जहां इसके लिए न तो कोई सुरक्षा उपलब्ध हो पाती है और न ही रोजगार की कोई गुंजाइश। आशा है कि वाल्मीकि अंबेडकर आवास योजना शहरी गरीबों और उनकी झुग्गी बस्तियों को बेहतर जीवन-स्तर तथा व्यवस्थित पक्के मकानों में सिर छुपाने का अवसर दे पाएगी।

वाल्मीकि अंबेडकर आवास योजना की और एक खासियत यह है कि इसके तहत मकान का आबंटन, घर की महिला यानी अमूमन पत्नी, मां आदि के नाम पर किया जाएगा। जरूरत पड़ने पर पत्नी और पति के साझा नाम पर भी आबंटन किया जा सकता है। लेकिन अकेले पुरुष सदस्य के नाम पर आबंटन नहीं किया जाएगा।

वाल्मीकि अंबेडकर आवास योजना का बुनियादी मकसद शहरों में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे परिवारों को आसरा देना अथवा उनके मौजूदा आसरे को व्यवस्थित करके उन्हें पक्की छत मुहैया कराना है। सरकारी घोषणा के मुताबिक इस योजना को राजग द्वारा अंगीकृत शासन के राष्ट्रीय एजेंडे में वर्णित ''सबके लिए आवास'' तथा ''राष्ट्रीय आवास एवं पर्यावास नीति'' के अनुरूप तैयार किया गया है। सरकार को लगता है कि इस योजना की मदद से शहरों और कस्बों को अंततः स्लम यानी झुग्गी बस्तियों से मुक्त कराया जा सकेगा। गौरतलब है कि मानव आवास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन ने भी दुनिया के सभी देशों की सरकारों के सामने शहरों को स्लममुक्त बनाने का लक्ष्य रखा है।

वाल्मीकि अंबेडकर आवास योजना के तहत घरों की औसत लागत 40,000 से 60,000 रुपये तक आंकी गई है। इसके लिए राज्यों की शहरी विकास एजेंसियों, जिला शहरी विकास एजेंसियों तथा राज्य सरकार द्वारा अधिकृत अन्य एजेंसियों द्वारा स्थानीय नगर पालिकाओं आदि की मदद से गरीबों की छंटाई, स्थानीय परिवेक्ष के मुताबिक उनके लिए घर बनाने की परियोजना, वित्त निर्धारण आदि तय किए जाएंगे। इन परियोजनाओं को राज्य सरकार अपने स्तर पर केंद्रीय शहरी विकास मंत्रालय अथवा आवास एवं शहरी विकास निगम (हडको) को मंजूरी तथा इनके लिए राशि जारी करने के लिए भेजेगी। इस राशि में सब्सिडी तथा कर्ज दोनों ही हिस्से शामिल हैं।

वाल्मीकि अंबेडकर आवास योजना के तहत लोगों को मकान बनाने के लिए पैसा मुहैया कराने के लिए शहरी स्लमों की परिभाषा वर्ष 2001 की जनगणना के लिए निर्धारित परिभाषा के अनुरूप ही मानी जाएगी। इस योजना की खासियत यह है कि इसमें वैसे तो शहरी झुग्गी बस्तियों, झोपड़पट्टियों आदि शहरी स्लमों में रहने वाले लोगों में भी गरीबी रेखा से नीचे के लोगों पर खास ध्यान दिया जाएगा। इसके साथ ही घरों के निर्माण में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ी

जातियों तथा समाज के कमजोर तबकों एवं विकलांगों को ही प्राथमिकता दी जाएगी। इन सभी वर्गों के लोगों के लिए इस योजना में भी आरक्षण का प्रावधान किया जाएगा ताकि इन्हें अपना हक मिल सके।

गौरतलब है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों की तादाद देश भर की औसतन 100 करोड़ आबादी में से करीब एक चौथाई यानी 25 करोड़ है। किसी भी लिहाज से इतनी बड़ी आबादी की जरूरतों की अनदेखी नहीं की जा सकती, लेकिन इन तबकों की आजादी के बाद से लगातार उपेक्षा हो रही है। सरकारी नौकरियों में आरक्षण और अन्य तमाम योजनाओं के बावजूद गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले लोगों में करीब आधी तादाद इन्हीं तबकों की है। जनजातियों की कुल संख्या देश भर में करीब 8.5 करोड़ है, लेकिन उसमें से आधे गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहे हैं। हाल ही में उड़ीसा में काशीपुर ब्लॉक में आदिवासियों की आम की गुठलियों के चूरे का सड़ा हुआ घोल पीने से हुई मौतें इस बात की गवाह हैं कि उनकी जिंदगी किस कदर कठिनाइयों की शिकार है। रोजगार की तलाश में यह लोग अव्वल तो शहर आने से अपने परिवेश और भाषा की पाबंदियों के कारण डरते हैं और यदि आ भी जाते हैं तो इन्हें शहरों में बदतर जिंदगी गुजारनी पड़ती है। इस लिहाज से वाल्मीकि अंबेडकर आवास योजना में इन वर्गों को आरक्षण देने का प्रावधान स्वागत योग्य है।

वाल्मीकि अंबेडकर आवास योजना की और एक खासियत यह है कि इसके तहत मकान का आबंटन, घर की महिला यानी अमूमन पत्नी, मां आदि के नाम पर किया जाएगा। जरूरत पड़ने पर पत्नी और पति के साझा नाम पर भी आबंटन किया जा सकता है। लेकिन अकेले पुरुष सदस्य के नाम पर आबंटन नहीं किया जाएगा। गौरतलब है कि इस प्रावधान की नौबत ज्यादातर शहरी गरीब परिवारों में मर्दों की शराब, जुआ आदि में पैसा बर्बाद करने और इसके लिए अपने बीवी-बच्चों को ताक पर रखकर घर तक गिरवी रख देने की प्रवृत्ति के कारण आई है। स्त्रियों के नाम पर मकान होने के कारण वे ऐसा नहीं कर पाएंगे और बच्चों के सर पर आसरा बना रहेगा।

इस योजना के तहत कम से कम 15 वर्ग मीटर के भूखंड पर मकान बनाने का प्रावधान रहेगा। इतनी जगह में आमतौर पर एक कमरा तो बन ही सकता है इसके साथ ही एक शौचालय बनाना भी जरूरी रहेगा। इसके लिए जमीन की कीमत सहित कस्बों में अधिकतम 40,000 रुपये आबंटित किए जाएंगे। इनमें से 20,000 रुपये बतौर सब्सिडी और 20,000 रुपये रियायती ब्याज दर पर कर्ज के वास्ते दिए जाएंगे, इन्हें आसान किस्तों में लौटाया जा सकेगा। इस सब्सिडी और कर्ज की रकम भी किस्तों में दी जाएगी। जैसे-जैसे मकान बनता जाएगा, वैसे-वैसे रकम मिलती जाएगी। इसका मकसद रकम का दुरुपयोग रोकना और निर्धारित कार्य में ही उसे इस्तेमाल किया जाना है। बड़े शहरों में इस योजना के तहत सब्सिडी और कर्ज मिलाकर 50,000 रुपये तक और महानगरों में यह 60,000 रुपये तक दिए जाने का प्रावधान है।

उल्लेखनीय है कि शहरों में स्लम बस्तियों के बाशिंदों के व्यवस्थित पुनर्वास की योजनाओं की शुरुआत देश में पहली बार पूर्व प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के प्रधानमंत्रित्व काल में 1990 में राजधानी दिल्ली में की गई थी। तब आर.के. पुरम में प्रयोग विहार और गोविंदपुरी में एकता विहार में वहां पहले से झुग्गी बस्तियों में गंदगी में रह रहे लोगों को उसी जमीन पर व्यवस्थित तरीके से नक्शा बनाकर पक्के मकानों में बसाया गया था। वहां पक्की नालियां, सीवर, स्कूल, पार्क आदि सुविधाएं भी उस भूखंड का सही नियोजन करके उन लोगों को उपलब्ध कराई गई थी। तभी पहली बार स्लम बस्तियों के लोगों को पक्के मकानों के लिए शत-प्रतिशत सब्सिडी देने के बजाय उनकी सहकारी आवास समितियां बनवाकर आधी रकम उनसे लगवाकर और बाकी की आधी रकम के बराबर कर्ज मुहैया कराया गया था। वह प्रयोग दिल्ली की और कई स्लम बस्तियों में भी झुग्गीवासियों को व्यवस्थित रूप से पक्के मकानों में बसाने के लिए काम आ रहा है। वाल्मीकि अंबेडर आवास योजना उस प्रयोग से इस मायने में भिन्न है कि एक तो इस योजना का दायरा बहुत विस्तृत है और दूसरे इसे लागू करने के लिए आधी राशि बतौर सब्सिडी यानी मुफ्त में दी जा रही है। यह योजना यदि पूरी ईमानदारी और निष्ठा से लागू हो पाई तो इससे समाज के वे तबके वास्तव में लाभान्वित होंगे जो जिंदगी भर एक गज जमीन खरीदने लायक पैसा भी नहीं जुटा पाते। इस योजना के तहत मकान मिलने पर उन परिवारों के लिए आर्थिक स्थिरता के साथ ही साथ शिक्षा और रोजगार के नए रास्ते भी खुलेंगे। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

उदारीकरण में आम आदमी की जिन्दगी

○ एम.एन. सिंह

दस सालों के आर्थिक सुधार एवं उदारीकरण का दौर भारत के लिए मिला-जुला रहा है। इससे हमारी अर्थव्यवस्था में कुछ सकारात्मक बदलाव आए, तो इसके कुछ नकारात्मक पहलू भी सामने आए। देखने में आया है कि जैसे-जैसे बाजार प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है, उद्योग जगत के श्रमिक रोजगार से हटते जा रहे हैं। लेखक ने आर्थिक सुधारों को 'मानवीय' बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया है।

दस सालों के आर्थिक सुधार एवं उदारीकरण का दौर भारत के लिए मिला-जुला रहा है। इससे हमारी अर्थव्यवस्था में कुछ सकारात्मक बदलाव आए, तो इसके कुछ नकारात्मक पहलू भी सामने आए। 1990 के दशक में विकास दर कभी भी 6 प्रतिशत से ज्यादा नहीं रही जबकि 1950, 1960 एवं 1970 के दशक में यह दर औसतन 3 प्रतिशत रही। 1980 के दशक में विकास दर में वृद्धि शुरू हुई। 1990 के दशक में एक स्थायित्व एवं बेहतर स्थिति बनी हुई थी जो उदारीकरण, भूमंडलीकरण एवं आर्थिक सुधारों के नए प्रयोगों के लिए उचित दौर था। इस दौरान हमारा विदेशी मुद्रा भंडार शून्य के इर्द-गिर्द था। स्थिति यह थी कि हमारी अर्थव्यवस्था की आयात करने की क्षमता दो सप्ताह तक की ही रह गई थी। आज हमारे पास विदेशी मुद्रा भंडार करीब 40 मिलियन डालर का है। लंदन की विश्व-प्रतिष्ठित 'इकानामिस्ट' ने इस महीने के प्रारंभ में अपने एक सर्वेक्षण के बाद लिखा है कि ऐसा प्रतीत होता है कि आर्थिक समृद्धि 'नई हिन्दू दर' 6 प्रतिशत पर निश्चित-सी हो गई है। स्मरण रहे कि 'हिन्दू समृद्धि दर' की बात सबसे पहले प्रो. राज कृष्ण ने चलाई थी। उनका मानना था कि हिन्दू-बहुल भारत परंपरागत रूप से जिस चीज से चिपक जाता है, वहीं रहता है। भले ही दुनिया कहीं की कहीं पहुंच जाए।

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने आर्थिक समृद्धि की वार्षिक दर नौ प्रतिशत करने की बात की थी और वित्त मंत्री ने सुधारों की एक नई श्रृंखला या उदारीकरण के दूसरे चरण की घोषणा की थी, परंतु लगता है कि अर्थव्यवस्था आगे जाने के बजाय पीछे जा रही है। 'इकानामिस्ट' की रिपोर्ट 2000 के अनुसार केन्द्र और राज्य सरकारों का कुल राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 10 प्रतिशत हो गया है। औद्योगिक उत्पाद जड़वत है। नए वित्त वर्ष में औद्योगिक क्षेत्रों की हालत और बिगड़ी है। अमेरिकी मंदी के कारण हमारे यहां सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित 'नई अर्थव्यवस्था' के भी दुर्दिन आ गए हैं। कृषि क्षेत्र में 60 प्रतिशत श्रम शक्ति लगी है यद्यपि उसका राष्ट्रीय आय में योगदान घटकर एक चौथाई हो गया है। प्रबंधन की दशा यह है कि एक ओर सरकारी गोदामों में अनाज रखने की जगह नहीं है तो दूसरी ओर 25 से 30 करोड़ लोगों, यानी एक-चौथाई से ऊपर देशवासियों को पेट भरने के लिए अनाज उपलब्ध नहीं है क्योंकि अनाज खरीदने के लिए उनके पास पैसा नहीं है। उन्हें पैसे तभी मिलेंगे जब उन्हें काम मिलेगा। काम हमारे पास है ही नहीं। काम दिलाने के लिए सरकार के पास न तो कोई कार्यक्रम है और न ही कोई योजना। सरकार के अनुसार उसका लक्ष्य वार्षिक कृषि संवृद्धि दर को पिछले दशक के औसत 3.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 4.5 प्रतिशत करना है मगर 'इकानामिस्ट' के अनुसार उसकी नीतियों का रुख देश को इस लक्ष्य से हटाकर दूर ले जा रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुई। दुनिया के लगभग सभी संप्रभु राष्ट्रों की लोकतांत्रिक सरकारों

ने इस संघ की स्थापना कुछ निश्चित मूल्यों की रक्षा के लिए की थी। धीरे-धीरे संयुक्त राष्ट्र संघ की कई एजेंसियां अस्तित्व में आईं। इन्हीं में से एक है यू.एन.डी.पी. यानी यूनाइटेड नेशन्स डेवलपमेंट प्रोग्राम। विभिन्न सरकारों के साथ मिलकर जनता के हित में योजनाएं बनाने का कार्य शुरू हुआ। गरीबों के लिए इस एजेंसी ने कई महत्वपूर्ण कार्य किए। लेकिन उसी के साथ 1960 के दशक के बाद नई प्रवृत्ति भी दिखाई दी। यू.एन.डी.पी. की छतरी के नीचे गरीबों के नाम पर कमाने-खाने का धंधा शुरू हो गया। इसे लोगों ने 'पावर्टी इंडस्ट्री' की संज्ञा दी। गरीबों को लेकर यू.एन.डी.पी. के सिद्धांतकारों ने जो अवधारणाएं प्रस्तुत कीं, उनमें 11 प्रतिशत का जमीनी यथार्थ से कोई रिश्ता नहीं है। इसके बावजूद यू.एन.डी.पी. एक उदार चेहरा बना रहा है क्योंकि कुछ हद तक इन्हें जनता को जवाबदेही दर्शानी पड़ती है।

यू.एन.डी.पी. की पहली रिपोर्ट (1999) 'ग्लोबलाइजेशन' पर थी और 2000 की रिपोर्ट मानवाधिकारों पर। इन दोनों रिपोर्टों के कुछ सकारात्मक पक्ष भी हैं। लेकिन इसी दौरान अमेरिका के दबाव में संयुक्त राष्ट्र समेत उसकी सभी एजेंसियों का 'कारपोरेटाइजेशन' शुरू हो गया। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की अच्छी लगने वाली योजनाओं को महत्व दिया जाने लगा। यू.एन.डी.पी. मानव विकास रिपोर्ट 2001 इसका ज्वलंत उदाहरण है। इसमें सर्वाधिक जोर प्रौद्योगिकी पर दिया गया है। इसमें जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका इस कदर बढ़ाकर प्रस्तुत की गई है कि मानो उसके आ जाने से दुनिया भर में भूख/अनंत गरीबी की समस्या हल हो जाएगी।

इस रिपोर्ट के संदर्भ में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि रिपोर्ट पूरी तरह से विश्व बैंक के इशारे पर तैयार की गई है जो 'संयुक्त राष्ट्र संघ' की संस्था नहीं है। वहां 'एक वोट, एक देश' का नारा नहीं चलता। जो देश ज्यादा पैसा देते हैं उनके मत भी ज्यादा होते हैं। विश्व बैंक हर साल अपनी रिपोर्ट में विभिन्न देशों के 'मानव विकास' के बारे में 'टिप्पणियां' करता है जिसकी आलोचना भी होती है। खुद यू.एन.डी.पी. ने कई बार विश्व बैंक की रिपोर्ट पर आपत्तियां की हैं। वैसे हाल के वर्षों में विश्व बैंक के खिलाफ कई आवाजें उठी हैं। इससे निपटने के लिए विश्व बैंक ने अपनी नीति बदली और संयुक्त राष्ट्र संघ को माध्यम बनाने की रणनीति अपनाई। यह जानकर सब लोग स्तब्ध रह गए हैं कि जिस यू.एन.डी.पी. ने अपनी दो रिपोर्टों में 'ग्लोबलाइजेशन' और 'मानवाधिकार हनन' के खतरों के प्रति सतर्क करने का काम किया था, वही यू.एन.डी.पी. अब प्रौद्योगिकी को गरीबी दूर करने का सबसे बड़ा अस्त्र मान रही है। यूं कहा जाए तो यू.एन.डी.पी. रिपोर्ट पूर्व में बनाई गई उसकी खुद की मान्यताओं के विरुद्ध है। यह पूरी तरह बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पक्ष में खड़ी है। रिपोर्ट का सर्वाधिक दु:खद पक्ष यह है कि इसमें अधिकांश समस्याओं के बारे में तथ्य एवं विश्लेषण के स्तर पर तो सच को स्वीकार किया गया है लेकिन उन समस्याओं के दूर करने के जो नुस्खे सुझाए गए हैं वे वहीं हैं जिनके कारण समस्याएं पैदा हुई। सच को स्वीकार करना उनकी मजबूरी थी, क्योंकि चेहरे पर नकाब चढ़ाने के लिए गरीबों की तरफदारी जरूरी है। इसलिए मर्ज को पहचाने बिना गलत दवा की सिफारिश की गई। उदाहरणार्थ, रिपोर्ट में उस जैव प्रौद्योगिकी को गरीबों के लिए एक जबर्दस्त हथियार बताया गया है जिसके तहत जीन बदल कर प्रयोगशाला में फसलों के बीज तैयार किए जाते हैं। रासायनिक खाद उस बीज के जीन में ही डाल दी जाती है। कहा जा रहा है कि इससे इतना अन्न पैदा होगा कि तीसरी दुनिया के देशों की समस्या स्वत: समाप्त हो जाएगी। जबकि असलियत ठीक इसके विपरीत है। दुनिया में भूख की समस्या उतनी नहीं है जितनी कुप्रबंधन एवं बंटवारे की है। समस्या यह है कि किस तरह इस पैदावार को गरीबों तक पहुंचाया जाए। चूंकि रख-रखाव का हमारे पास कोई इंतजाम नहीं है इसलिए उसे गोदामों में छोड़ दिया जाता है जैसे कि वर्ष 2000 में आलू के रिकार्ड तोड़ उत्पादन के समय हुआ था। वह इतना अधिक हो गया था कि किसान कोल्ड स्टोरों में आलू निकालने ही नहीं गए क्योंकि उत्पादन लागत ही मिलनी मुश्किल हो गई थी। समस्या उत्पादन की नहीं, बल्कि वितरण प्रणाली की है।

आंकड़े बताते हैं कि खाद के कारण पैदा होने वाली बीमारियों से प्रति वर्ष 15 लाख लोग मर जाते हैं, करोड़ों पशु-पक्षियों का जीवन नष्ट हो जाता है, भूजल प्रदूषित हो जाता है जिसके कारण पीलिया के रोगियों की संख्या में काफी वृद्धि हो जाती है। जैव प्रौद्योगिकी क्या कहर बरपाएगी, यह किसी को पता नहीं है।

जिस तरह तीस साल पहले रासायनिक खादों को भूख मिटाने का एक बड़ा अस्त्र मान लिया था, उसी तरह यू.एन.डी.पी. की यह रिपोर्ट जैव प्रौद्योगिकी को भगवान बनाने पर तुली हुई

है। आंकड़े बताते हैं कि खाद के कारण पैदा होने वाली बीमारियों से प्रति वर्ष 15 लाख लोग मर जाते हैं, करोड़ों पशु-पक्षियों का जीवन नष्ट हो जाता है, भूजल प्रदूषित हो जाता है जिसके कारण पीलिया के रोगियों की संख्या में काफी वृद्धि हो जाती है। जैव प्रौद्योगिकी क्या कहर बरपाएगी, यह किसी को पता नहीं है। यू.एन.डी.पी. इसकी वकालत करने को आतुर है। रिपोर्ट के आने से पूर्व ही थाईलैंड, ब्राजील, मैक्सिको, दक्षिण अफ्रीका, श्रीलंका जैसे तीसरी दुनिया के देशों ने अपने यहां 'जीन' बदलकर तैयार किए गए बीजों और पदार्थों को प्रतिबंधित करने का फैसला लिया है। रिपोर्ट में एक और सच स्वीकार करने को कहा गया है कि दुनिया में भयानक गैर-बराबरी है। अमीर-गरीब के बीच का फासला बढ़ा है। जो रास्ता बनाया जाता है उससे गैर-बराबरी की खाई और बढ़ जाती है। प्रौद्योगिकी को गरीबों के लिए वरदान बताने वाली यह रिपोर्ट यह भी कहती है कि टेक्नालाजी कोई चांदी की बुलेट नहीं है, जिससे सारी समस्याएं स्वत: समाप्त हो जाएं। प्रौद्योगिकी का विकास बाजार की जरूरतों को ध्यान में रखकर किया जाता है। साथ ही उसकी कीमत भी अदा करनी पड़ती है। वैसे भी विश्व के एक प्रतिशत अमीरों की आय दुनिया के 57 प्रतिशत गरीबों की कुल आय से ज्यादा है। अमेरिका में सर्वाधिक अमीर 10 प्रतिशत, (जिनकी कुल संख्या लगभग 2.5 करोड़ होगी), लोगों की कुल आमदनी विश्व की सर्वाधिक निर्धन 43 प्रतिशत आबादी, यानी करीब 200 करोड़ लोगों की कुल आय से भी अधिक है। दुनिया के 25 प्रतिशत अमीरों का विश्व में 75 प्रतिशत आय पर कब्जा है। असमानता का आलम यह है कि विश्व के सर्वाधिक 10 प्रतिशत अमीर जितना कमाते हैं उसका 1.5 प्रतिशत गरीब कमा पाता है।

आर्थिक सुधारों के क्रियान्वयन के परिणामस्वरूप हमारा निर्यात बढ़ा और राष्ट्र की विकास दर में वृद्धि हुई। प्रगति के बावजूद यह कटु सत्य है कि आर्थिक सुधारों का असर पूरे राष्ट्र पर एक जैसा नहीं पड़ा। जिन प्रदेशों की जनसंख्या कम थी, जैसे पंजाब, महाराष्ट्र, हरियाणा, तमिलनाडु, वे राज्य प्रगति कर रहे हैं, परंतु जनसंख्या की दृष्टि से बड़े राज्य—उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, राजस्थान पहले की अपेक्षा पीछे जा रहे हैं। आर्थिक सुधारों का लाभ गरीबों तक नहीं पहुंचा है। दूसरा बिन्दु यह है कि राष्ट्र की समूची अर्थव्यवस्था पर इन सुधारों का असर नहीं पड़ा है। अधिकांश राज्यों में जनसंख्या दर के साथ साक्षरता का ग्राफ ऊपर नहीं जा रहा है, स्वास्थ्य सुविधाएं व्यापक नहीं हो पा रही हैं। सबको पेयजल प्राप्त नहीं हो पा रहा है, भारत की तीन चौथाई जनसंख्या के पास अपना खुद का घर नहीं है। इन समूचे प्रश्नों को आर्थिक विकास से अलग रख कर नहीं देखा जा सकता।

आर्थिक सुधारों हेतु बाजार-आधारित अर्थव्यवस्था में उदारीकरण की नीतियों के चलते उद्योगपतियों एवं व्यापारियों को सुविधाएं हासिल हुई हैं। जहां तक आर्थिक सुधारों के कुछ क्षेत्रों में असफल रहने का प्रश्न है, तो अभी हमारा बैंकिंग और वित्तीयन क्षेत्र सुदृढ़ नहीं हुआ है। बैंकिंग प्रणाली में अभी भी तमाम खामियां हैं। ऋणों पर ब्याज दर अधिक है जबकि बचत पर ब्याज दर कम है। दस वर्षों के उदारीकरण और आर्थिक सुधारों के चलते सब गांवों को विद्युत उपलब्ध नहीं कराई जा सकी है और न ही सड़कों का निर्माण कराया गया है। साथ ही सड़कों का रख-रखाव भी नहीं हो पा रहा है। ये ऐसे क्षेत्र हैं, जहां आर्थिक सुधार लागू किए जाने हैं।

पूरी दुनिया में जहां कहीं भी आर्थिक सुधार लागू किए गए, वहां सामाजिक विकास के कार्यों को बाजार भरोसे नहीं छोड़ा गया। सामाजिक विकास का दायित्व सरकारों का है। इस दायित्व की पूर्ति के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर पंचायती राज व्यवस्था और स्थानीय प्रशासन को अधिक अधिकार देकर मजबूत किया जाना समय की मांग है। देखने में आ रहा है कि जैसे-जैसे बाजार प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है, उद्योग जगत के श्रमिक रोजगार से हटते जा रहे हैं। आर्थिक सुधारों को 'मानवीय' बनाना आवश्यक है।

हमारी आबादी में 5 वर्ष से 24 वर्ष की आयु समूह के ज्यादा लोग स्कूलों में दाखिल हैं। नवयुवकों का एक बड़ा हिस्सा माध्यमिक और उच्च शिक्षा पाने के लिए स्कूलों में है और उक्त आयु समूह के छात्रों की शिक्षा क्षेत्र में भागीदारी में जबर्दस्त वृद्धि हुई है। हमारी अर्थव्यवस्था में ढेर सारे क्षेत्र ऐसे हैं, जहां कामगारों व लोक सेवकों की संख्या बढ़नी नहीं, घटनी चाहिए। यहां नौकरशाही और निम्न उत्पादक सार्वजनिक उपक्रमों का जिक्र किया जा सकता है जहां कामगारों की भीड़ ही भीड़ है। कई क्षेत्रों में नए रोजगार के अवसरों में बढ़ोतरी की बात तो दूर, रोजगार अवसरों में कमी आ रही है। सार्वजनिक क्षेत्र के तमाम बैंकों में वी.आर.एस. के जरिए श्रमशक्ति कम करने की कोशिश की गई है। बैंकिंग क्षेत्र इसमें अपवाद नहीं है। 1991 में भारत की जनसंख्या 84.63 करोड़ थी, 2001 में यह बढ़कर 102.70 करोड़ हो गई। वर्ष 1989-90 से 1998-99 में रोजगार की बढ़ोतरी सिर्फ 6.68 प्रतिशत हुई, जबकि इस अवधि में रोजगार तलाशने वालों की पंजीकृत जनसंख्या में

22.56 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। रोजगार भारत में सिर्फ आर्थिक मामला नहीं है। विकसित देशों में रोजगार का सवाल अस्तित्व का सवाल नहीं होता। भारत जिस स्थिति में है, वहां करोड़ों लोगों के लिए रोजगार अस्तित्व का सवाल बना हुआ है। महत्वपूर्ण यह है कि कैसे यह सुनिश्चित किया जाए कि आर्थिक सुधारों के साथ-साथ रोजगारों के अवसरों में भी वृद्धि हो। ऐसा नहीं हुआ तो युवा शक्ति का सही मायने में विकास नहीं हो पाएगा।

भारत में पिछले दस सालों में अर्थव्यवस्था की नीतियों और राजनीति में गहरी खाई पैदा हो गई है। अर्थव्यवस्था की जो नीतियां अर्थशास्त्रियों द्वारा आसानी से अच्छी और उचित साबित की जा सकती हैं, वे आम जनता के स्तर पर पहुंचते ही राजनीतिक कारणों से डरावनी हो जाती हैं। यह अनायास नहीं है कि तमाम आर्थिक सुधारों के 'स्टार' श्री मनमोहन सिंह उस क्षेत्र दक्षिण दिल्ली से चुनाव हार जाते हैं जिसे बहुत ही 'एलीट' क्लास का चुनाव क्षेत्र माना जाता है। आर्थिक-स्तर पर जो बहुत तार्किक नजर आता है, वह राजनीतिक-स्तर पर खासा डरावना साबित होता है। 'इकानामिस्ट' का सर्वेक्षण समस्याओं के नब्ज पर हाथ रखने की कोशिश करता है जब वह कहता है कि सेवाओं की बढ़ती भूमिका अर्थव्यवस्था के लिहाज से तो ठीक है पर भारत में सेवा क्षेत्र में उस तरह के रोजगार अवसर पैदा नहीं हो सकते जिस तरह के रोजगार अवसरों की जरूरत भारतीय अर्थव्यवस्था को है।

इकानामिस्ट 2001 के सर्वे ने कई मामलों में अर्थव्यवस्था की समस्याओं पर हाथ रखने की कोशिश की है। निम्नतम जीवन-स्तर का 'बिहार' उन सारी बातों का प्रतिनिधित्व करता है, जो गड़बड़ी पैदा करती हैं। इकानामिस्ट के इसी सर्वेक्षण में एक महत्वपूर्ण तालिका दी गई है जिसे विश्व बैंक से लिया गया है। वर्ष 1999 में चीन में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश 38.8 अरब डालर का था, भारत में यह राशि 2.2 अरब डालर की थी। विश्व कारोबार में भारतीय सेवाओं की भागीदारी 1.2 प्रतिशत थी, चीनी सेवाओं की भागीदारी 2.1 प्रतिशत थी। विश्व बाजार में भारतीय साज-समान की भागीदारी 7 प्रतिशत थी, जबकि चीनी साज-समान की भागीदारी 3.3 प्रतिशत थी। भारत कई मामलों में चीन के आस-पास नहीं है, बहुत आगे है। यहीं से समस्या शुरू हो जाती है कि इकानामिस्ट जिस विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है, वह साफतौर पर अर्थव्यवस्था की सारी समस्याओं का समाधान बाजार में देखती है। बाजार-आधारित विकल्पों का चरित्र यह होता है कि वे ज्यादा कुशल तो हो सकते हैं पर उनके दायरे में वे नहीं आ सकते जिनकी खरीद क्षमता नीची है। भारत जैसी अर्थव्यवस्था में बाजार-आधारित विकल्पों के दुष्परिणाम भी आने शुरू हो गए हैं।

सुधारों के जरिए देशवासियों से तो धैर्य रखने की बात की जाती है लेकिन राजनीतिज्ञों एवं नौकरशाहों को अपने कार्यों के प्रति अधिक उत्तरदायी बनाने की दिशा में कुछ प्रगति नहीं हुई है। समाजवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण की बात तो छोड़ें, हमारे यहां पूंजीवाद ठीक-ठाक अपनी पटरी पर चले, इसके लिए भी जरूरी है कि 'कानून का शासन' पूरी तरफ कायम हो। दिन-प्रति-दिन का अनुभव बताता है कि पिछले कुछ वर्षों में यह पूर्णतया कमजोर हुआ है। न्यायालयों को साधन-सम्पन्न नहीं बनाया गया है और न ही निकट भविष्य में इस दिशा में कुछ होने वाला है। हजारों मुकदमे अदालतों में वर्षों से लंबित पड़े हैं। आज प्रशासन के निकम्मेपन के कारण रोज-ब-रोज न्यायालयों को आगे आना पड़ता है।

सर्वेक्षण में समाज के अंदर और क्षेत्रों के बीच बढ़ती विषमता पर भी रोशनी डाली गई है। उसके अनुसार धनी व्यक्ति और क्षेत्र पहले की अपेक्षा अधिक धनी होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में गरीब लोगों और गरीब क्षेत्रों का सुधार के प्रति सद्भाव होना मुश्किल है।

रिपोर्ट में कई जगह 'इथिक्स' और 'मूल्य मापदंडों' की बात की गई है लेकिन विकास नीति का जो खाका खींचा गया है उसमें भयानक 'अनइथिकल' बातें हैं। कोई नहीं कह सकता है कि जैव प्रौद्योगिकी एक 'इथिकल' टेक्नालाजी है। रिपोर्ट लिखने वालों के लिए प्रौद्योगिकी वही है जो बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओं से निकली हो। गरीब किसान के हजारों साल पुराने नुस्खे किसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी द्वारा परिवर्तित कर बाजार में आते हैं, तब उन्हें प्रौद्योगिकी मान लिया जाता है। कुल मिलाकर यह अंतर्विरोधों का पुलिंदा है; गरीब की जिंदगी के साथ खिलवाड़ है। आम आदमी जीवनपर्यन्त इन समस्याओं से मुक्ति नहीं पा सकता। कुछ ऐसा ही खेल 'ग्लोबल काम्पैक्ट' में भी होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ की अन्य संस्थाएं—यूनिसेफ, यूनेस्को, डब्ल्यू.टी.ओ., आई.एल.ओ. भी इसी रास्ते पर आगे चलने का मन बना चुकी हैं। करीब ढाई वर्ष पहले 'यूनिसेफ' के तत्कालिक निदेशक कैरम बेलामी ने कहा भी था कि संयुक्त राष्ट्र संघ एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का उद्देश्य अब एक हो जाना चाहिए। ❑

(लेखक काशी हिंदू विश्वविद्यालय के सामाजिक विज्ञान विभाग से सम्बद्ध हैं।)

बाल मजदूर—बचपन से दूर

○ योगेश चन्द्र शर्मा

बच्चों को सामान्यत: ईश्वर का प्रतिरूप और देश का भावी भाग्यविधाता कहा जाता है। मगर उन्हीं बच्चों के कोमल हाथों में कुदाल या फावड़ा, सिर पर भारी-भरकम बोझ तथा आंखों से निरन्तर बहते आंसू देखकर भी हम प्राय: उसकी अनदेखी कर देते हैं। क्या हैं कारण और क्या है उनका निदान—इसी की लेख में विस्तृत चर्चा की गई है।

बच्चे की जो आयु स्कूल की बेंच पर बैठ कर अपना पाठ याद करने और समझने की होती है, उसी अल्पायु में वह होटल या रेस्टोरेंट में मेजों की गंदगी साफ करता है, कारखानों के दूषित वायुमंडल में छोटी-छोटी खतरनाक मशीनों से जूझता है या अपने मालिक की अर्दली में रहते हुए उसकी झिड़कियां सहता है।

हमारे यहां इस समय लगभग छह करोड़ बाल मजदूर हैं जिनकी आयु पांच से चौदह वर्ष के बीच है। कुछ विद्वानों के अनुसार बाल मजदूरों की वास्तविक संख्या इससे भी कहीं अधिक है। ये बच्चे हथकरघा, होटल, रेस्टोरेंट, साइकिल-मोटर मरम्मत, मछली पालन, जूता-पालिश, चर्मकारी तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक उद्योग-धन्धों में लगे हुए हैं। अकेले मध्य प्रदेश के बीड़ी उद्योग-धन्धे में ही दो लाख से भी अधिक बाल मजदूर लगे हैं। तमिलनाडु के दियासलाई उद्योग, गुजरात के हीरा-तराशन उद्योग तथा कश्मीर के गलीचा उद्योग में भी लाखों मजदूरों का बचपन सिसक रहा है। कोयला खदानों, चाय बागानों तथा ईंट, चूना भट्टियों में भी बाल मजदूरों की संख्या कम नहीं है। श्रम मंत्रालय के एक सर्वेक्षण में बतलाया गया है कि हर तीसरे परिवार में एक बाल श्रमिक है और पांच से पंद्रह वर्ष की आयु का हर चौथा बच्चा श्रमिक है। कुछ कारखानों में तो नब्बे प्रतिशत तक बाल मजदूर हैं। मेघालय की खानों तथा देश की माचिस फैक्ट्रियों में काम करने वाले 28 हजार बच्चे ऐसे हैं जिनकी आयु केवल पांच-छह वर्ष है। दिल्ली के विभिन्न उद्योग-धंधों में, अत्यंत दयनीय स्थिति में लगभग 25 हजार मजदूरों का बचपन दम तोड़ रहा है। भोपाल में पांच हजार से भी अधिक बच्चे होटलों, बीड़ी बनाने के कारखानों, लुहारी, चर्मकारी तथा घरों पर अत्यंत अस्वास्थ्यकर वातावरण में कार्यरत हैं। कलकत्ता में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार वहां बीस हजार बाल मजदूर हैं। संपूर्ण पश्चिमी बंगाल में बाल मजदूरों की कुल संख्या पांच लाख से भी अधिक है। उत्तर प्रदेश में एक करोड़ से भी अधिक बच्चों का बचपन मेहनत-मजदूरी के गलियारों में खो गया है। राजस्थान में भी बाल मजदूरों की संख्या कई लाख है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि तथा अन्य धन्धों में बड़ी संख्या में बाल मजदूर कार्यरत हैं। पिछले कुछ अरसे से वहां निरन्तर बढ़ रही बेरोजगारी से प्रभावित तथा शहरी चकाचौंध से आकर्षित बाल मजदूरों का शहरों की ओर प्रवाह भी निरंतर बढ़ रहा है। इन बच्चों में से कुछ माता-पिता की स्वीकृति से आते हैं और कुछ यूं ही भाग आते हैं। कानपुर में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार वहां प्रति सप्ताह लगभग दो हजार बच्चे भाग कर आते हैं, जिनमें से अधिकांश असामाजिक तत्वों के जाल में फंस जाते हैं।

नियोजकों को लाभ

विभिन्न कारखानों में बाल मजदूरों को वरीयता देने का मुख्य कारण है उनका सस्ता होना। सामान्यत: पंद्रह-बीस रुपये प्रति दिन के वेतन पर ही ये उपलब्ध हो जाते हैं। इन बाल मजदूरों

का नियोजक कभी-कभी अपने धन्धे में शत- प्रतिशत तक लाभ कमाता है और प्रति वर्ष यह लाभ बढ़ता चला जाता है। बाल मजदूरों को दिए जाने वाला वेतन तब भी वर्षों तक वहीं बना रहता है। भुखमरी के शिकार और स्वयं अपने परिजनों द्वारा प्रताड़ित बाल मजदूर अपने श्रम के महत्व से अपरिचित रहकर उस नाममात्र के वेतन पर अपने श्रम को प्रसन्नता से बेच भी देता है। नन्हा-सा पेट होता है और उसके लिए केवल सूखी रोटियों की दरकार। अधभूखा और अधढका रहने की आदत तो उसे जन्म से ही होती है।

बाल मजदूरों को यह नाममात्र वेतन भी सदैव दिया ही जाए, यह आवश्यक नहीं। नियोजक कभी-कभी उन्हें खरीद भी लेता है या उनके माता-पिता को कुछ धन उधार देकर उन्हें बंधक भी बना लेता है। बच्चों की खरीद-फरोख्त के समाचार यदा-कदा समाचार-पत्रों में भी छपते हैं। गरीबी के कारण माता-पिता द्वारा कर्ज लिया जाना और उसके बदले में अपने किसी बच्चे को बंधक रख देने की घटना आज अवैध होते हुए भी कुछ स्थानों पर आम बात है। कर्ज कभी अदा नहीं हो पाता और तदनुसार बाल मजदूर कभी मुक्त नहीं हो पाता। बालपन की आयु व्यतीत हो जाने के उपरान्त भी वह अपने मालिक का गुलाम ही बना रहता है तथा युवावस्था में ही वृद्धावस्था को भोगते हुए एक दिन असामायिक रूप से दम तोड़ देता है।

बाल मजदूरों के साथ न किसी हड़ताल का खतरा है, और न किसी यूनियनबाजी का। उसे उन कानूनों की भी जानकारी नहीं होती जो सरकार उसके कल्याण के लिए बनाती है। सो नियोजक जमकर उसका शोषण करता है। उससे 12-13 घंटे तक काम लिया जाना सामान्य बात है। कभी कभी यह अवधि 15-16 घंटे भी हो जाती है। होटलों में काम करने वाले बाल-मजदूरों का कार्यकाल तो ब्रह्म मुहुर्त से ही प्रारंभ हो जाता है, जब उन्हें होटल की सफाई तथा बर्तनों की धुलाई जैसे ढेरों काम करने पड़ते हैं। इसके बाद उन्हें रात्रि को 11-12 बजे तक निरन्तर काम से जूझना पड़ता है। बाल मजूदरों के साथ नियोजक का व्यवहार भी बड़ा अमानवीय और कभी-कभी क्रूर होता है। बात-बात पर पिटाई, डंडे बरसाना और गाली-गलौज आम बात है। दो-तीन दिन तक भूखे रखकर कमरे में बंद कर देना भी असाधारण नहीं है। काम करने के वातावरण को शुद्ध और स्वस्थ बनाने की तो नियोजक को कभी कोई चिन्ता ही नहीं होती। बच्चों को दूषित वातावरण से होने वाली हानि का अहसास नहीं हो पाता। जब विषाक्त वातावरण तथा कुपोषण के कारण बाल मजदूर किसी भयानक रोग से ग्रस्त हो जाता

बाल श्रम परियोजनाओं का 33 जिलों में विस्तार

श्रम मंत्रालय राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजनाओं (नेशनल चाइल्ड लेबर प्रोजेक्टस) का 33 अन्य जिलों में विस्तार करेगा। श्रम मंत्री शरद यादव ने नौवीं पंचवर्षीय योजना में इन परियोजनाओं के लिए आबंटित 249.60 करोड़ रुपये में से शेष बची राशि, जोकि 66 करोड़ रुपये है, योजना आयोग से जारी करने का आह्वान किया है। श्रम मंत्रालय पिछले साल तक 116.44 करोड़ रुपये राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजनाओं पर खर्च कर चुका था। योजना आबंटन में से चालू वर्ष में 67 करोड़ रुपये उपलब्ध कराए जा चुके हैं।

सरकार देश से बाल श्रम की बुराई हटाने को प्रतिबद्ध है। इसी उद्देश्य से पिछले दो वर्षों में बाल श्रम परियोजनाओं के लिए प्राप्त अनुदान का अधिकतम इस्तेमाल किया गया। वर्ष 1999-2000 के दौरान बाल श्रम परियोजनाओं पर 37 करोड़ रुपये खर्च किए गए जो 34 करोड़ रुपये की आबंटित बजट राशि से 3 करोड़ रुपये अधिक थे। पिछले वित्त वर्ष के दौरान भी इन परियोजनाओं पर 38 करोड़ रुपये खर्च किए गए जो आबंटित राशि से दो करोड़ रुपये अधिक थे।

इस वर्ष से 4 नई राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजनाएं शुरू किए जाने से इन परियोजनाओं की कुल संख्या बढ़कर सौ हो गई है। राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के तहत करीब दो लाख बाल श्रमिकों के पुनर्वास के उद्देश्य से 13 बाल श्रम बहुल राज्यों के सौ जिलों में तीन हजार से अधिक विशेष स्कूल/प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किए गए।

अनुदान योजनाओं के तहत स्वैच्छिक संगठनों की करीब 70 से अधिक परियोजनाएं अभी कार्यान्वित की जानी है। प्रधानमंत्री ने इस वर्ष घोषणा की थी कि सरकार वर्ष 2005 तक खतरनाक उद्योगों से बाल श्रम हटाने के लिए प्रतिबद्ध है। सरकार ने अभी तक 13 व्यवसायों और 17 प्रक्रियाओं को बाल श्रमिकों के लिए खतरनाक घोषित किया है। वर्ष 1999 की जनगणना के अनुसार देश में 11.3 मिलियन बाल श्रमिक हैं। आंध्र प्रदेश 1.66 बाल श्रमिकों के साथ पहले स्थान पर है। इसके बाद उत्तर प्रदेश में 1.4 मिलियन बाल श्रमिक और मध्य प्रदेश में 1.35 मिलियन बाल श्रमिक हैं।

है तथा काम करने योग्य नहीं रहता अथवा उस पर होने वाला व्यय, प्राप्त होने वाले लाभ की तुलना में बढ़ जाता है तो नियोजक उसे सड़कों पर भीख मांगने या मरने-खपने के लिए छोड़ देता है।

विश्वव्यापी समस्या

बाल मजदूरों की समस्या केवल भारत में ही नहीं, विश्वव्यापी है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आंकड़ों के अनुसार इस समय विश्व में लगभग 17 करोड़ बाल मजदूर अत्यंत खतरनाक कामों में लगे हुए हैं और इनमें से अधिकतर विकासशील देशों के कारखानों तथा विभिन्न उद्योग-धन्धों में कार्यरत हैं। मजदूरी की इस मजबूरी के कारण ये बच्चे शिक्षा भी ग्रहण नहीं कर पाते। इन बच्चों में से अधिकांश केवल स्वयं का पेट भरने के लिए भी मजदूरी करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय बाल अध्ययन संगठन के पूर्व महानिदेशक के अनुसार बहुत से परिवार ऐसे हैं जिनमें यदि बच्चे कमाना बंद कर दें तो पूरे परिवार के भूखों मरने की नौबत आ जाए। उस भूख से बचने के लिए कहीं-कहीं माता-पिता स्वयं ही बच्चों को बंधक रख देते हैं या भीख मांगने जैसे कार्यों में लगा देते हैं। ऐसी घटनाएं भी प्रकाश में आई हैं जहां माता-पिता स्वयं बालकों के हाथ-पैर तोड़ कर उन्हें अपंग कर देते हैं, ताकि अधिक भीख मिल सके।

बाल मजदूरी के कलंक से विकसित देश भी अछूते नहीं। इंग्लैंड में 13 से 16 वर्ष की आयु के कुल किशोरों का लगभग एक-चौथाई भाग अंशकालिक मजदूरी करता है। इटली में 10 से 15 वर्ष की आयु के बीच के लगभग 21 प्रतिशत बालक अंशकालिक मजदूरी करते हैं। पश्चिम जर्मनी में की गई एक जांच में प्रचलित कानूनों के विरुद्ध साढ़े तीन लाख बाल मजदूर पाए गए। अमरीका जैसे पूंजीवादी देश में भी कुछ ऐसे बच्चे हैं जो चार-पांच वर्ष की उम्र में ही अपना अंशकालिक काम शुरू कर देते हैं और 13-14 वर्ष की आयु पूरी होने तक पूरा वक्त काम करने लगते हैं।

फिलीपीन्स, दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण कोरिया, आस्ट्रेलिया तथा ब्राजील आदि अनेक देशों में बाल मजदूरी का एक और घिनौना रूप देखने में आया है। वह है बाल वेश्यावृत्ति। फिलीपीन्स में इस तरह की सैकड़ों बाल वेश्याएं हैं जिनकी आयु 10 से 15 वर्ष के बीच है। ब्राजील में इस प्रकार की बाल वेश्याओं की संख्या 15 हजार से भी अधिक है जो अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए अपने अल्पवयस्क शरीर का धन्धा करती हैं। उद्योग-धन्धों तथा गृह कार्य आदि में सेवारत बालिकाएं भी अपने मालिकों की हवस की शिकार प्राय: सभी देशों में होती रहती हैं।

1959 से संयुक्त राष्ट्र ने अपने एक घोषणा-पत्र में बच्चों के कुछ मूल अधिकारों की चर्चा की थी। इनमें से मुख्य अधिकार हैं स्नेह, प्रेम और सद्भावना पाने का अधिकार, पर्याप्त पोषण और डाक्टरी देखभाल का अधिकार, नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार, खेल और मनोरंजन का अधिकार तथा व्यक्तिगत क्षमताओं के विकास का अधिकार, आदि। इस घोषणा के बीस वर्ष उपरान्त वर्ष 1979 को बच्चों को समर्पित करके उसे बाल वर्ष के रूप में भी मना लिया गया। परन्तु इन घोषणाओं अथवा आयोजनों से बाल मजदूर की हालत में कोई सुधार नहीं हो पाया। अंतर्राष्ट्रीय संगठन ने अपने 1973 के अधिवेशन में श्रमिक के लिए न्यूनतम 15 वर्ष की आयु निर्धारित करके उस बारे में एक प्रस्ताव पारित किया था, परन्तु उस प्रस्ताव को भी अभी तक अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एक-चौथाई सदस्य राज्य भी अपने यहां लागू नहीं कर पाए हैं। यह तथ्य इस बात का प्रतीक है कि आज का मनुष्य किस प्रकार अपने सामान्य नागरिक कर्तव्यों के प्रति भी उपेक्षा-भाव धारण किए हुए है।

जिन देशों ने बाल मजदूरी तथा बच्चों के शोषण को अवैध घोषित किया हुआ है, वहां भी कानून इतने अपूर्ण हैं कि उन पर ठीक प्रकार अमल नहीं हो पाता। कभी-कभी निजी या राष्ट्रीय स्वार्थ भी इन कानूनों तथा संयुक्त राष्ट्र की घोषणा के पालन में बाधक बन जाते हैं। उदाहरणार्थ फिलीपीन्स में बाल वेश्यावृत्ति को नियंत्रित न कर पाने का कारण यह है कि उससे पर्यटन उद्योग के विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ने की आशंका है।

भारत में भी बाल मजदूरी तथा बच्चों के शोषण पर अनेक कानूनी प्रतिबंध लगे हुए हैं। हमारे संविधान के 24वें अनुच्छेद के अनुसार 14 वर्ष की आयु से कम के किसी भी बच्चे को किसी भी कारखाने, खान या अन्य खतरनाक व्यवसाय में नहीं रखा जा सकता। अनुच्छेद 39 (ङ) और (च) के अंतर्गत बच्चों की कोमल और कच्ची वय का आदर करने तथा उनका शोषण न करने की बात कही गई है। कारखाना अधिनियम 1948, बाल अधिनियम 1960 (संशोधित 1978) बाल श्रमिक अधिनियम 1986 तथा अन्य अनेक कानूनों में भी बच्चों को अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में श्रम पर लगाने पर प्रतिबंध है। मगर व्यवहार में इन कानूनों से बचने के लिए अनेक साधन ढूंढ लिए गए हैं। मसलन नौकरी पर रखने से पहले ही बालक के पिता या संरक्षक से यह लिखवा लिया जाता है कि वह अपनी इच्छा से बालक को नौकरी पर भिजवा रहे हैं अथवा उस बाल श्रमिक की आयु अधिक दिखलाकर रिकार्ड में वयस्क बतला दिया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर किसी चिकित्सक का प्रमाण-पत्र प्राप्त करना भी कठिन नहीं होता। बाल श्रम से संबंधित कानूनों को तोड़ने वालों के लिए जुर्माना और जेल दोनों की व्यवस्था है, किन्तु व्यवहार में ऐसा यदा-कदा ही होता है।

उच्चतम न्यायालय ने 10 दिसम्बर 1996 को याचिका संख्या 465/86 एम.सी. मेहता बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य के मामले में एक ऐतिहासिक निर्णय दिया है। इस निर्णय में खतरनाक एवं गैर-खतरनाक उद्योगों में कार्यरत बाल श्रमिकों के बारे में दिशा-निर्देश दिए गए। इसमें कहा गया कि खतरनाक उद्योगों में लगे बाल मजदूरों को मुक्त कराकर उनका पुनर्वास किया जाए और नियोजकों से प्रति बालक बीस-बीस हजार रुपये जुर्माने के रूप में वसूल किए जाएं। प्रत्येक बाल मजदूर को स्कूल भेजा जाए और उसके परिवार के कम से कम एक वयस्क सदस्य को रोजगार दिया जाए अथवा पांच हजार रुपये कल्याण कोष में जमा करवाए जाएं। गैर-खतरनाक उद्योगों में काम करने वाले बाल मजूदरों के लिए कहा गया कि उनके नियोजकों को समय-सीमा और अपने बाल मजदूरों की शिक्षा के लिए पाबन्द किया जाए। इन निर्देशों का जोर-शोर से प्रचार हुआ और उसके बाद बाल मजदूरों के लिए सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण के बारे में पूर्व जानकारी हो जाने से अधिकांश नियोजकों ने अपने बाल मजदूरों को या तो इधर-उधर कर दिया या उनके वयस्क होने का झूठा प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लिया। इसलिए सर्वेक्षण आधा-अधूरा रहा और जो नियोजक पकड़ में आ पाए, उनके विरुद्ध चालान पेश किए गए और वे कानूनी दांव-पेचों से खिलवाड़ करते रहे। इस प्रकार राजनीतिक और प्रशासनिक इच्छाशक्ति के अभाव में उच्चतम न्यायालय का यह ऐतिहासिक निर्णय भी अपना वांछित प्रभाव नहीं दिखला पाया।

समाधान क्या हो?

प्रश्न उठता है कि समस्या का समाधान क्या हो? निश्चित ही बाल मजदूरों को नौकरी से हटा देने या नियोजकों को उसके लिए दंडित कर देने मात्र से ही समस्या का स्थायी समाधान नहीं निकलेगा। उस स्थिति में हमारे सामने दूसरी समस्या यह उठ खड़ी होगी कि मजदूरी से दूर हुए बालक क्या करें तथा उनका पेट कैसे भरे?

समस्या के स्थायी समाधान के लिए हमें सर्वप्रथम तो 14 वर्ष तक के बालकों के लिए शिक्षा को न केवल अनिवार्य और मुफ्त करना होगा, बल्कि इस आयु तक के बालकों की पुस्तक आदि की व्यवस्था भी सरकारी कोष से करनी होगी।

दूसरी बात यह है कि बच्चों को श्रमसाध्य या खतरनाक कार्यों में लगाने पर कठोर प्रतिबंध लगाना होगा तथा इसके अमल पर पर्याप्त निगरानी रखनी होगी। अपराधी के लिए कठोर दंड की व्यवस्था भी आवश्यक है। इस संबंध में हमें यह ध्यान रखना होगा कि बाल मजदूर की तरफ से शिकायत करने शायद कोई नहीं आएगा। इसलिए शिकायत की प्रतीक्षा न करके प्रशासन को स्वयं समय-समय पर जांच करनी होगी।

तीसरे, इस बात का पर्याप्त प्रचार किया जाना चाहिए कि बच्चों का जन्म माता-पिता के लिए एक उत्तरदायित्व है। इसका उन्हें अहसास होना चाहिए। बच्चों को शिक्षित करना और उन्हें श्रेष्ठ नागरिक बनाना माता-पिता की जिम्मेदारी है।

चौथे, यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक परिवार में कम से कम एक सदस्य को आवश्यक रूप से रोजगार मिले और उसके बदले में उसे इतना पारिश्रमिक अवश्य मिले कि वह अपने परिजनों का भी भली प्रकार भरण-पोषण कर सके जिससे उसे अपने बालकों को असमय ही मजदूरी पर भेजने के लिए विवश न होना पड़े। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

इलेक्ट्रानिक मीडिया के युग में प्रिंट मीडिया

○ विनोद कुमार

इक्कीसवीं सदी में, जिसे हम कंप्यूटर युग के नाम से संबोधित करते हैं, इलेक्ट्रानिक मीडिया ने प्रिंट मीडिया पर जबर्दस्त हमला कर दिया है। ऐसे में प्रश्न यह है कि क्या प्रिंट मीडिया पूर्णत: धाराशाही हो जाएगा या इस चुनौती का सामना करेगा? आखिर क्या होगा प्रिंट मीडिया का भविष्य?

ऊपरी तौर पर लगता है कि कंप्यूटर, टीवी और इंटरनेट जैसे सशक्त इलेक्ट्रानिक मीडिया के सामने परंपरागत प्रिंट मीडिया यानी समाचार पत्र-पत्रिकाओं का अस्तित्व संकट में पड़ गया है और लोगों का रुझान इलेक्ट्रानिक मीडिया की तरफ हो रहा है, लेकिन इस बात में पूर्ण सच्चाई नहीं है। भारतीय प्रेस परिषद की एक रिपोर्ट 'फ्यूचर ऑफ प्रिंट मीडिया' के अनुसार देश में समाचार-पत्र उद्योग की विकास दर 5.6 प्रतिशत प्रति वर्ष है और पत्र-पत्रिकाओं की प्रसार संख्या लगातार बढ़ रही है।

ऊपरी तौर पर लगता है कि इलेक्ट्रानिक मीडिया के सामने परंपरागत प्रिंट मीडिया का अस्तित्व संकट में पड़ गया है लेकिन इस बात में पूर्ण सच्चाई नहीं है। भारतीय प्रेस परिषद की एक रिपोर्ट 'फ्यूचर ऑफ प्रिंट मीडिया' के अनुसार देश में समाचार-पत्र उद्योग की विकास दर 5.6 प्रतिशत प्रति वर्ष है और पत्र-पत्रिकाओं की प्रसार संख्या लगातार बढ़ रही है।

इसमें दो राय नहीं कि इलेक्ट्रानिक मीडिया ने प्रिंट मीडिया को प्रभावित किया है, लेकिन खतरे जैसी कोई बात नहीं है। उन विकसित देशों में, जहां इलेक्ट्रानिक मीडिया का प्रभुत्व है, प्रिंट मीडिया का अस्तित्व बरकरार है। विकसित देशों समेत विश्व के किसी भी देश में अखबारों की प्रसार संख्या और पाठक संख्या में अधिक कमी नहीं हुई है। इसलिए संभावना है कि भारत में भी ऐसा नहीं होगा। इस आशावादिता के पीछे तर्क यह है कि देश की 40 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे रहती है। आने वाले कुछ वर्षों में इनके जीवन-स्तर में इतना महत्वपूर्ण परिवर्तन भी नहीं होने वाला कि ये इलेक्ट्रानिक मीडिया का साजो-सामान खरीद सकें।

भारतीय प्रेस परिषद के अध्यक्ष न्यायमूर्ति पी.बी. साबंत की अध्यक्षता वाली 21 सदस्यीय समिति की रिपोर्ट के अनुसार शिक्षितों और अर्द्धशिक्षितों की वर्तमान संख्या अखबार के साथ जुड़ी रहेगी। भारतीय प्रेस के संदर्भ में 24 प्रश्नों की प्रश्नावली के आधार पर यह रिपोर्ट बनाई गई है। इस प्रश्नावली पर पत्रकारों, पत्रकारों के संगठन, अखबारों के मालिक और संपादकों, न्यायाधीशों और जनप्रतिनिधियों से भी जवाब मिले हैं।

समिति ने प्रिंट मीडिया को सलाह दी है कि वह टेलीविजन से मुकाबला करने के लिए खबरों की पृष्ठभूमि विस्तारपूर्वक छापे और किसी भी खबर को सूचनात्मक ढंग से प्रस्तुत करे। 163 पृष्ठों की इस रिपोर्ट में कहा गया है कि टेलीविजन एक बार में एक दर्जन खबरों को ही दिखा सकता है, जबकि अखबार एक बार में सौ से ज्यादा खबरें छाप सकता है। परिषद की रिपोर्ट के मुताबिक लोग किसी भी घटना को विस्तारपूर्वक जानने के लिए अखबार और पत्रिका ही पढ़ते हैं क्योंकि टेलीविजन से विस्तृत जानकारियां नहीं मिल सकती हैं।

इलेक्ट्रानिक मीडिया दो तरह से प्रिंट मीडिया को प्रभावित करता है। पहला, किसी खबर को टेलीविजन चैनल इतनी बार दिखाता है कि अखबार में पढ़ने पर वह बासी लगती है। दूसरा, प्रिंट मीडिया में छपने वाले विज्ञापनों का बहुत बड़ा

भाग इलेक्ट्रानिक मीडिया ने हड़प लिया है। इससे अखबार और पत्रिकाओं के मालिकों की आमदनी घटी है। यद्यपि देश में 1959 में टेलीविजन का प्रादुर्भाव हो चुका था, लेकिन चार दशक बीत जाने पर भी लोग टेलीविजन को मनोरंजन का साधन मानते हैं और अखबारों को इसलिए तवज्जों देते हैं कि उनकी विश्वसनीयता कायम है।

अखबारों और पत्रिकाओं में कुछ विशिष्ट गुण हैं जिसकी वजह से वे सदा लोकप्रिय रहेंगे। अखबारों का छोटा होना, ताकि कहीं भी मोड़ कर ले जा सके, पठनीय होना, अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकना और कम पैसों में खरीदा जाना ऐसे तत्व हैं जो इलेक्ट्रानिक मीडिया पर भारी पड़ते हैं। और फिर बिजली गुल होने पर भी अखबारों को किसी तरह पढ़ा जा सकता है, जबकि यह सुविधा टेलीविजन में नहीं होती।

इलेक्ट्रानिक मीडिया के बढ़ते प्रयत्न के बावजूद प्रिंट मीडिया प्रभावी रूप से पाठकों पर अपनी पकड़ बनाए रखने में सफल रहा है। हाल में जारी नेशनल रीडरशिप स्टडीज कौंसिल की रिपोर्ट 'नेशनल रीडरशिप सर्वे 2001' के अनुसार अखबारों की पाठक संख्या में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। आज देश में अखबारों के पाठकों की संख्या 17 करोड़ 80 लाख है। सर्वेक्षण में 484 समाचार-पत्रों को शामिल किया गया था। इसके मुताबिक समाचार-पत्र शहरी क्षेत्रों में अपनी पाठक संख्या 52 प्रतिशत से बढ़ाकर नौ करोड़ 60 लाख तक करने में सफल रहे। देश के सर्वाधिक साक्षर राज्य केरल में समाचार-पत्रों की पहुंच 70 प्रतिशत, दिल्ली में 55 प्रतिशत, तमिलनाडु में 37 प्रतिशत तथा महाराष्ट्र में 36 प्रतिशत व्यक्तियों तक है। उत्तर प्रदेश और बिहार में समाचार-पत्रों की पहुंच का प्रतिशत बहुत कम है, लेकिन मध्य प्रदेश और उड़ीसा में पाठक संख्या बेहतर है।

वर्ष 1995 से लेकर आज तक के बीच के पांच वर्षों में बाल-पत्रिकाओं की पाठक संख्या में गिरावट अवश्य आई है। बाल-पत्रिकाओं की पठनीयता आज 6.4 प्रतिशत से घटकर मात्र 3.8 प्रतिशत रह गई है। फिल्मी पत्रिकाओं का भी कमोबेश यही हाल रहा है परंतु समसामयिक पत्रिकाएं अपनी पाठक संख्या बनाए रखने में सफल रही हैं। इतना ही नहीं, कंप्यूटर एवं स्वास्थ्य संबंधी पत्रिकाओं की पाठक संख्या में भी वृद्धि हो रही है।

इस सर्वेक्षण में टेलीविजन, रेडियो और इंटरनेट को भी वृहद रूप से शामिल किया गया। केबल एवं सैटेलाइट चैनलों ने पांच वर्षों के छोटे से अंतराल में अपनी दर्शक संख्या में महत्वपूर्ण वृद्धि की है। इंटरनेट ने मात्र एक वर्ष की अवधि में 46 लाख व्यक्तियों तक अपनी पहुंच बना ली। आज उसका सर्वाधिक उपयोग ई-मेल और सर्फिंग में किया जा रहा है। जिस तरह से इंटरनेट का उपयोग बढ़ रहा है उससे लगता है कि भविष्य में टेलीविजन का एक विशेष दर्शक उससे छिन सकता है।

इलेक्ट्रानिक मीडिया के बढ़ते प्रयत्न के बावजूद प्रिंट मीडिया प्रभावी रूप से पाठकों पर अपनी पकड़ बनाए रखने में सफल रहा है। हाल में जारी नेशनल रीडरशिप स्टडीज कौंसिल की रिपोर्ट 'नेशनल रीडरशिप सर्वे 2001' के अनुसार अखबारों की पाठक संख्या में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। आज देश में अखबारों के पाठकों की संख्या 17 करोड़ 80 लाख है।

आधुनिक प्रसारण माध्यमों के कारोबार में हो रही बढ़ोतरी को देखते हुए अनुमान लगाया गया है कि रेडियो इस सदी में अपने स्वर्णिम युग में वापिस लौट सकता है।

टेलीविजन, पचास से अधिक टीवी चैनल और इंटरनेट के इस जमाने में शहरों में रेडियो के प्रति लगाव भले ही कम हो रहा हो, लेकिन सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में अब भी यह मनोरंजन और सूचना संप्रेषण का सबसे सस्ता और सुगम साधन है। भारतीय वाणिज्य और उद्योग मंडल महासंघ (फिक्की) और आर्थर एंडरसन की अध्ययन रिपोर्ट के मुताबिक श्रोताओं की तादाद बढ़ना ही रेडियो के सुनहरे भविष्य की ओर संकेत करता है। रिपोर्ट के अनुसार डेढ़ करोड़ रुपये के कारोबार वाले रेडियो के विकास के अच्छे संकेत हैं। सरकार ने भी इस माध्यम को बढ़ावा देने के लिए कई उपाय किए हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि अन्य क्षेत्रों के मुताबिक ही रेडियो, इंटरनेट और एफ.एम. प्रसारण से सिग्नल भेजे जा रहे हैं। रेडियो और टीवी सेट में अनुपात 3:1 का है। रिपोर्ट के अनुसार आकाशवाणी के पूरे देश में 207 प्रसारण केन्द्र हैं, जिसमें 148 मीडियम वेव, शार्ट वेव और 122 एफएम हैं। रेडियो देश के 90 प्रतिशत क्षेत्रों की 98.81 प्रतिशत आबादी के कानों तक पहुंचता है। वित्तीय वर्ष 2000 में आकाशवाणी को 80 करोड़ रुपये की आय हुई। इस अध्ययन में कहा गया है कि आने वाले समय में रेडियो का विकास देश के विज्ञापन खर्च और उसमें रेडियो के हिस्से पर निर्भर करेगा। ❑

ट्रांसजीनिक फसलें : कितनी सार्थक, कितनी निरर्थक?

○ भूपेंद्र राय

उन फसलों को ट्रांसजीनिक, फसलें कहा जाता है जिनमें कोई न कोई जीन या जीनसमूह, जो वांछित गुण या गुणों का निर्धारण करते हैं, उस पौधे की सामान्य लैंगिक संकरण-क्षमता के बाहर से प्राप्त हों तथा जिनसे उस फसल के उत्पादन या उपयोगिता के लिए उत्कृष्टता प्राप्त की गई हो। लेखक का कथन है कि हमारे देश में यह विधा कारगर सिद्ध हो सकती है यदि इसका उपयोग सही तरीके से किया जाए।

उन फसलों को ट्रांसजीनिक, पराजीनी या आनुवंशिक रूप से परिवर्तित फसलें कहा जाता है जिनमें कोई न कोई जीन या जीनसमूह, जो वांछित गुण या गुणों का निर्धारण करते हैं उस पौधे की सामान्य लैंगिक संकरण-क्षमता के बाहर से, या आनुवंशिक रूप से असंबंधित जीव-स्त्रोत से प्राप्त हों तथा जिनसे उस फसल के उत्पादन या उपयोगिता के लिए उत्कृष्टता प्राप्त की गई हो। इस प्रकार के जीनों से युक्त प्रजातियां अब संयुक्त राज्य अमेरिका में मक्के के लगभग 35 प्रतिशत क्षेत्र में, सोयाबीन के 55 प्रतिशत क्षेत्र में तथा कपास उत्पादन के लगभग 50 प्रतिशत क्षेत्र में उगाई जा रही हैं। ऐसा अनुमान है कि विगत 15 वर्षों में 45 देशों में इस प्रकार की फसलों की लगभग 60 जातियों में 10 गुणों के लिए 25 हजार से भी अधिक परीक्षण किए गए हैं। विश्व स्तर पर अब लगभग 40 लाख से भी अधिक हेक्टेयर पर इनकी खेती की जा रही है। एक पूर्वानुमान के अनुसार ये प्रजातियां अगले 35 वर्षों में विकसित-देशों में विभिन्न फसलों में उगाई जा रहीं उन्नत-प्रजातियों का पूर्ण रूप से स्थान ले लेंगी।

इस वक्त कुछ अंतर्राष्ट्रीय बीज-कंपनियों तथा विश्व विद्यालयों द्वारा विकसित पराजीनी-प्रजातियों का व्यवसायिक स्तर पर बीज-उत्पादन तथा वितरण किया जा रहा है। उनमें प्रसिद्ध बीज-कंपनी मोनसेंटों द्वारा विकसित कीट-प्रतिरोधी मक्का तथा कपास की; कालजीन बीज-कंपनी द्वारा विकसित कीट-प्रतिरोधी कपास की; ऐश्ग्रो कंपनी द्वारा विकसित विषाणु-रोग प्रतिरोधी चप्पन कद्दू; तथा कार्नेल विश्वविद्यालय द्वारा विकसित पपीते की विषाणुरोग रहित प्रजातियां प्रमुख हैं। कई फसलों में अब ऐसी पराजीनी प्रजातियां उपलब्ध हैं जो अच्छी उपज के साथही कुछ खास जैविक-आपदाओं (कीटों तथा रोगों), अजैविक आपदाओं (जैसे लवण-प्रतिरोधिता, पाले का प्रकोप, सूखा-प्रतिरोधिता, आदि) के लिए प्रतिरोधी हैं। अब टमाटर की ऐसी पराजीनी-प्रजाति प्राप्त की जा सकती है जिसके फल धीरे-धीरे पकते हैं, जल्दी सड़ते नहीं तथा लंबी परिवहन यात्रा में दूर-दराज तक सही-सलामत पहुंच सकते हैं। ऐसी भी ट्रांसजीनी प्रजातियां उपलब्ध हैं जो तृणनाशी दवाओं के उपयोग के प्रति प्रतिरोधिता का गुण धारण किए हुए हैं।

सार्थक पहलू

दुनिया भर में चावल पर मूलत: भोजन के लिए आश्रित लोगों में लगभग 10 प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो विटामिन 'ए' की कमी के कारण कई रोगों से ग्रसित रहते हैं। इनमें से लगभग एक लाख बच्चे प्रतिवर्ष इसकी वजह से काल-कलवित हो जाते हैं तथा लगभग साढ़े तीन लाख लोग अंधेपन का शिकार हो जाते हैं। इसके मद्देनजर सन 1980 में स्विटजरलैंड में पोट्रीकस महोदय द्वारा सुनहरे दाने वाले पराजीनी-धान पर शुरू किया गया अनुसंधान कार्य अब रंग लाया है। उन्होंने जर्मनी के पीटर बेयर महोदय के सहयोग से डैफोडिल पौधे से बीटा-

कैरोटिन (जो विटामिन 'ए' बनाने का प्राथमिक स्रोत है) वाले जीन को धान के पौधों में हस्तांतरित किया। इसके बाद इस जीन को मनीला स्थित अंतर्राष्ट्रीय धान अनुसंधान संस्थान के तत्वावधान में एशिया की धान की अधिक उपज देने वाली प्रजातियों में डाला गया। अब ऐसी पराजीनी-प्रजातियों के व्यवसायिक उत्पादन के लिए किसानों के खेतों पर जांच-पड़ताल के जरूरी परीक्षण किए जा रहे हैं। गरीब जनता के लिए जो चावल पर आश्रित रहती हैं, यह आवश्यक विटामिन 'ए' की प्राप्ति के लिए आशा की नई किरण बन सकती है।

उभरते प्रश्न

विगत पांच-छः वर्षों में पराजीनी-फसलों के बड़े पैमाने पर अपनाए जाने के सबब इन फसलों से होने वाले संभावित आनुवंशिक-प्रदूषण के खतरों तथा साथ ही इनसे प्राप्त भोज्य-पदार्थों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले कुप्रभावों पर कई सवालिया निशान लगे हैं। कुछ तो ऐसे हैं कि (1) क्या इन फसलों में मौजूद तृणनाशी प्रतिरोधिता वाले पौधों के परागकण हवा द्वारा उड़कर दूसरे सामान्य बिना-प्रतिरोधिता वाले पौधों पर जाने पर आक्रामक, स्थाई सुपरवीड तो पैदा नहीं करेंगे? (2) इन पौधों में मौजूद प्रतिरोधी बी.टी. जीन दूसरे लाभदायक नान-टारगेट कीटों को भी तो नहीं मार देंगे? (3) इन बी.टी. युक्त जीन-युक्त पौधों से प्राप्त भोज्य-पदार्थों के सेवन से इन्सान की सेहत पर दीर्घकालिक बुरा प्रभाव तो नहीं पड़ेगा तथा इन पराजीनी पौधों के वाइरस-स्रोत से प्राप्त डी.यन.ए. खंड विभिन्न रोगों के पैथोजनीक वाइरस के डी.यन.ए. खंड से संकरण कर कोई और अधिक आक्रामक वाइरस तो नहीं पैदा करेंगे जो आगे के लिए नया सरदर्द बनें। इन प्रश्नों का डर निर्मूल नहीं है कारण कि, ट्रांसजीनी पौधों में व्याप्त ज्यादातर जीन वाइरस तथा बैक्टीरिया से प्राप्त हैं और उनमें से कुछ रोग पैदा करने वाले भी हैं।

अब बी.टी. जीन युक्त पराजीनी-मक्का तथा कपास उगाने वाले कई लोगों का मानना है कि तस्वीर का दूसरा पहलू उतना चमकीला नहीं है जितना कि इसकी बीज बेचने वाली कंपनियां उजागर कर रही हैं। विगत पांच वर्षों में, जब से पराजीनी मक्का, सोयाबीन या कपास की प्रजातियों का किसानों के खेतों पर परीक्षण शुरू हुआ है, यूरोप तथा एशिया के कुछ देशों के साथ-साथ भारत के पर्यावरणविदों तथा उपभोक्ता-समूहों ने जमकर इसका विरोध किया है। अपने देश में मानसेंटों बीज कंपनी द्वारा कपास की प्रजातियों के किसानों के खेतों पर उगाए जाने के दौरान कर्नाटक तथा आंध्र-प्रदेश में अच्छा-खासा हंगामा हुआ है। इसी प्रकार फिलीपीन्स के किसानों ने मानसेंटों तथा डूपोंट कंपनियों द्वारा बी.टी. जीन वाले मक्का की प्रजातियों के परीक्षण पर काफी विरोध जताया है।

इन परीक्षणों के प्रति किसानों की नाराजगी का सबब कुछ-कुछ समझने योग्य है। कारण कि अब तक जितने भी पौधों की पराजीनी प्रजातियां किसानों के खेतों पर आई हैं, कुछ को छोड़कर वे मूलतः दो समस्याओं से ही संबंधित हैं। एक तो वे जो रोग तथा कीटों के प्रति प्रतिरोधी हैं तथा दूसरी वे, जो तृणनाशी-दवाओं के उपयोग के प्रति प्रतिरोधी हैं। इनमें तृणनाशी रसायनों के उपयोग के दौरान ये पौधे नहीं मरते, परंतु बाकी खर-पतवार मर जाते हैं और खेत खर-पतवारों से मुक्त हो जाता है। अब ऐसे पराजीनी-प्रजातियों का प्रचार-प्रसार वे ही कंपनियां मूलतः कर रही हैं जो बड़ी मात्रा में या तो इनका बीज बनाती हैं या फिर इन तृणनाशी-रसायनों का उत्पादन करती हैं तथा दुनियाभर में बेचती हैं। उनको तो बस अपने मुनाफे से मतलब है। पर अब कुछ लोगों का कहना है कि क्योंकर ऐसी तकनीकी का प्रचार-प्रसार हो जो ऐसे रसायनों के उपयोग को आवश्यक बनाए जिनका बड़े पैमाने पर उपयोग जमीन की कुदरती उर्वराशक्ति को प्रदूषित तथा प्रभावित करे। इतने से लाभ के लिए इतनी बड़ी कीमत चुकाना क्या वाजिब है? इन बीजों, तृणनाशी दवाओं के चलते हमारी कुदरती बीज-संपदा, खाद के उपयोग के ह्रास से आगामी पीढ़ी की जमीन की क्या हालत बनेगी, अभी यह तो नहीं मालूम परंतु लंबे समय में मिट्टी अपने साथ दुर्व्यवहार का कुछ मजा तो चखाएगी ही। दुनिया अभी मैड काऊ (पागल गाय) तथा उससे उत्पन्न त्रासदी को शायद ही भूल पाई हो।

अब कुछ लोगों का कहना है कि क्योंकर ऐसी तकनीकी का प्रचार-प्रसार हो जो ऐसे रसायनों के उपयोग को आवश्यक बनाए जिनका बड़े पैमाने पर उपयोग जमीन की कुदरती उर्वराशक्ति को प्रदूषित तथा प्रभावित करे। इतने से लाभ के लिए इतनी बड़ी कीमत चुकाना क्या वाजिब है?

जैविक-सुरक्षा

परजीनी फसलों से प्राप्त भोज्य-पदार्थों के उपयोग में जैविक सुरक्षा का मसला अहम है। इसके बाबत जो तजुर्बे सामने आए

हैं उनमें कुछ तो लाभप्रद हैं और कुछ नहीं। संयुक्त राज्य अमेरका के हवाई प्रांत में सन 1992 में रिंगस्पाट विषाणुरोग से पपीते की फसल तबाह हो गई। सन् 1994 के दौरान यह बीमारी पपीता उगाने वाले लगभग आधे क्षेत्रफल में फैल गई। परंतु कार्नेल विश्वविद्यालय के प्लांट-पैथोलाजिस्ट डेनिस गोन्साल्वेस महोदय द्वारा विकसित विषाणुरोग प्रतिरोधी पराजीनी पपीता की प्रजाति ने इस फल की खेती को उबार लिया। 'सनअप' तथा 'रेनबो' पराजीनी प्रजातियों को किसानों ने बड़े पैमाने पर अपनाया तथा इसके उत्पाद को बाजार में धड़ल्ले से बेचा। उपभोक्ताओं ने इसके स्वाद तथा उपयोग के प्रति कोई शिकायत नहीं की, और अब इन प्रजातियों की खेती चल निकली है। परंतु इतना तो तय है कि ट्रांसजिनिक-पौधों में जो सामान्य लैंगिक संकरण-क्षमता से बाहर के जीन होते हैं, वे कभी न कभी, कुछ न कुछ एलर्जेन तो पैदा करेंगे ही। हां, इतना जरूर है कि जहां यह मात्रा कम होगी, वहां उनका प्रभाव नहीं दिखेगा।

कार्नेल विश्वविद्यालय के कीटविद् जान लोशी महोदय ने सन 1999 में अपनी प्रयोगशाला में बी.टी. जीनयुक्त मक्का वाली एक प्रजाति से प्राप्त परागकणों को जब मोनार्क तितली के गिड़ारों पर छिड़काया तो बहुत सारे गिड़ार मर गए। हालांकि लोशी महोदय अभी यह नहीं मानते कि बी.टी. जीनयुक्त मक्के की खेती के कारण कुदरत में मोनार्क तितली के अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया है, पर अब इस ओर ध्यान देना समय की मांग तो है ही।

संयुक्त राज्य अमेरिका में अरीजोना राज्य के प्रसिद्ध कीटशास्त्री ब्रूस टाबासनिक महोदय ने बी.टी. जीनयुक्त कपास के खेतों का निरीक्षण जब किया तो पाया कि चूंकि कपास के परागकण हवा से उड़कर बाहर अन्यत्र नहीं फैलते, अत: बी.टी. जीन के फैलने का वहां कोई खतरा नहीं है। हां, इस पराजीनी कपास की वजह से कीट-नियंत्रण पर होने वाला उत्पादन खर्च लगभग 75 प्रतिशत तक कम जरूर हुआ है। अब यह सुझाया गया है कि बी.टी. जीनयुक्त पराजीनी कपास के खेत के चारों ओर रिफूज फसल के तौर पर बिना बी.टी. जीन वाली दूसरी प्रजाति को लगा दिया जाए तो इससे बी.टी. कपास पर पल रहे यदि कोई प्रतिरोधी कीट हों भी तो उनके फैलने से निजात मिल सकती है।

'ट्रेटर' या 'टर्मिनेटर' जीन

जैसा कि पहले बताया गया है सन 1998 में अपने देश में कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश के किसानों के खेतों पर मानसेंटो कंपनी द्वारा प्रदर्शित बी.टी. जीनयुक्त पराजीनी कपास के परीक्षण वाले पौधों को बुरी तरह तहस-नहस किया गया। वह इसलिए कि इन पौधों के बीजों में ट्रेटर या टर्मिनेटर जीन है जिसकी वजह से इस फसल से प्राप्त बीज पुन: जम नहीं सकेंगे। इस तरह कंपनी किसानों का हर साल बीज खरीदना अनिवार्य कर देगी। अत: इस देश में टर्मिनेटर-जीनयुक्त पराजीनी किसी प्रजाति के बीज को आने नहीं दिया जाएगा तथा उसे यहां उगाने भी नहीं दिया जाएगा। पर किसी ने यह पता नहीं लगाया कि जो फसल वे नष्ट कर रहे हैं उनके बीजों में यह टर्मिनेटर (या ट्रेटर) जीन है भी कि नहीं। इसके बाद इस बीज कंपनी ने एक सर्वेक्षण द्वारा पता लगाने की कोशिश की कि क्या भारत में पराजीनी उन्नत-प्रजातियों का कोई भविष्य है। सर्वेक्षण से पता चला कि यहां के 90 प्रतिशत किसानों ने प्रजाति-विकास के कार्य में बायोटेक्नालाजी के उपयोग को सही ठहराया है। वे उसके समर्थक हैं। जिस भी विधा से उन्हें अधिक उत्पादन मिले, अधिक लाभ मिले, वे उसका समर्थन करेंगें। वे ऐसी प्रजाति चाहते हैं जिसमें कीटों, रोगों के प्रति प्रतिरोधिता हो, वह हर तरह से सुरक्षित हो, पर उसमें टर्मिनेटर-जीन न हो। कारण कि टर्मिनेटर-जीन बीज कंपनी के फायदे के लिए तो ठीक है पर वह किसानों के, देश के हित में कतई नहीं है। अत: अपना देश भी अब अपने आपको आनुवंशिक-रूप से परिवर्तित फसलों की सुरक्षित-खेती के लिए मानसिक रूप से तैयार कर रहा है। इसके लिए अगस्त 1998 में भारत सरकार के बायो टेक्नोलाजी विभाग में गहन मंत्रणा की गई तथा इसके बाबत कुछ दिशा-निर्देश, नियम-कायदे सुझाए गए हैं। 24 जून, 1999 को टाटा इनर्जी रिसर्च इंस्टीट्यूट, नई दिल्ली ने 'आनुवांशिक रूप से परिवर्तित फसलें: फायदे तथा खतरे' विषय पर कार्यशाला का आयोजन किया। भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान एकादमी ने भी 28 अक्तूबर, 1999 को 'कृषि में आनुवांशिक रूप से परिवर्तित फसलों' पर एक राष्ट्रीय स्तर की बैठक की और जो बातें सुझाई गईं, उन पर अब अमल जारी है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य

अपने देश में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में बैंगन की प्रचलित 'पूसा-पर्पल' प्रजाति में क्रिस्टल प्रोटीन जीन को हस्तांतरित करके कीट-प्रतिरोधिता, राई की प्रजाति में अल्टरनेरिया जनित झुलसा रोग के लिए काइटीनेज द्वारा

प्रदत्त प्रतिरोधिता, (आर.यल.यम. 198 प्रजाति) धान की 'पूसा बासमती' 'आई.आर. 64' तथा 'कर्नाल लोकल' प्रजातियों में कीट-प्रतिरोधिता के लिए बी.टी. जीन को डालकर प्रतिरोधी प्रजातियां तैयार करने के प्रयास किए जा रहे हैं। कोयंबतूर स्थित तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय में धान में राइक्टोनिया जनित झुलसा रोग से मुक्ति पाने के लिए काइटीनेज जीन वाली पराजीनी प्रजातियों के विकास का प्रयास अब किया जा रहा है। इसी प्रकार तंबाकू अनुसंधान संस्थान राजामुंदरी में तंबाकू में कीट प्रतिरोधिता के लिए बी.टी. जीन का, माहिको बीज कंपनी द्वारा कपास में बोलवर्स कीट-प्रतिरोधिता के लिए बी.टी. जीन का, प्रोएग्रो बीज कंपनी द्वारा टमाटर में कीट प्रतिरोधिता के लिए बी.टी. जीन का, तथा राष्ट्रीय वानस्पतिक अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा कपास में कीट-प्रतिरोधिता के लिए बी.टी. जीन का उपयोग पराजीनी प्रजातियों के विकास के लिए किया जा रहा है।

पत्तागोभी तथा धान में लवण-सहिष्णुता के लिए बायोटेक्नालाजी का उपयोग एक सकारात्मक कदम है। अपने देश में समुद्र के तटवर्ती क्षेत्रों में धान की सफल खेती के लिए अब ऐसी प्रजातियों का विकास किया जा रहा है जो धान के पौधों को क्षारीय प्रभाव से मुक्त रखती हैं। जंगली धान से प्राप्त प्रतिरोधी जीन का क्लोन तैयार किया गया है जो सुंदरवन डेल्टा की क्षारीय मिट्टी में सफलतापूर्वक उग सकता है। मिट्टी में क्षार की उच्च मात्रा के बावजूद इनोसिटेज सिंथेस एंजाइमयुक्त पौधे कार्य करना बंद नहीं करते और खारे पानी वाले क्षेत्र में अपने आपको जीवित रखने के लिए प्रचुर मात्रा में इनोसिटोल पैदा करते हैं। इसके इसी गुण के कारण वे क्षारीयता के प्रभाव को सह सकते हैं। उनके इस गुण का पराजीनी प्रजातियों के विकास में इस्तेमाल किया जा रहा है।

अपने देश में हम प्रजाति विकास के कार्य में बायोटेक्नालाजी का उपयोग सार्थक रूप से कर सकते हैं। देश में कृषि की प्रगति में यह विधा काफी कारगर हो सकती है यदि इसका उपयोग सही तरीके से किया जाए। ❑

(लेखक काशी हिंदी विश्वविद्यालय, वाराणसी के कृषि विज्ञान संस्थान से संबद्ध हैं।)

ALLAHABAD'S Best Known Institute announces
IAS/PCS-2002
(Pre, Main and Pre-cum-Main)
हिन्दी माध्यम में अध्ययन
G.S., ESSAY, HISTORY, GEOGRAPHY, PUB. ADMN., HINDI LITT., PHILOSOPHY, POL. SCIENCE, SOCIOLOGY, ECONOMICS, LAW, ANTHRO, MATHS, PHYCHO, BOTANY AND ZOOLOGY. PCS (J) & APO कोर्स उपलब्ध
"POSITIVE (+ve)RESULT" की गारन्टी
Batch Starting Every Month | Hostel Available (Boys & Girls)
For details contact personally or for information bulletien send Rs. 50/- By D.D./MO to
मगर करना / करवाना होगा - - -
(i) 1 वर्ष तक हमारे साथ अथक परिश्रम
(ii) प्रति दिन 4-5 घन्टे (5-6 माह तक) Class Coaching
(iii) प्रति दिन हमारे Guidance में घर / हास्टल में 5-7 घन्टे अध्ययन, मनन, लेखन तथा वाचन
(iv) स्तरीय एवं बहुआयामी (Pre & Mains के लिए अलग - अलग) नोट्स निर्माण
(आपकी अपनी भाषा-शैली में, हमारे सहयोग से)
(v) साप्ताहिक नोट्स Correction (सिध्द तथा ख्यातिलब्ध व्यक्तित्वों द्वारा)
(vi) धैर्य एवं अनुशासन का पूर्ण निष्ठा से पालन
CAREER COACHING
13, Kamla Nehru Road, Allahabad. Tel # 0532-600428, 608582, 608595
on Telephone - Ask for RAJESH SHUKLA, HOD, CIVIL SERVICES CELL

पुष्प कृषि : रोजगार एवं निर्यात की अपरिमित संभावनाएं

○ आर.बी.एल. गर्ग

व्यावसायिक स्तर पर भारत का पुष्प कृषि का इतिहास अधिक पुराना नहीं, जबकि कुछ पश्चिमी देशों में पुष्प कृषि बहुत पहले से सुव्यवस्थापित व्यवसाय बन चुका था। भारत में पुष्प निर्यात की अपरिमित संभावनाएं तो हैं लेकिन समन्वित कृषि कार्यक्रम के अभाव में उसका पूरा लाभ हमें नहीं मिल पा रहा है।

भारत पारंपरिक रूप से अनेक किस्म के फूलों की कृषि करता है, जैसे गुलाब, चमेली, कुमुदनी, गेंदा आदि। लेकिन इनका प्रयोग मुख्यत: देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना में होता है। व्यावसायिक स्तर पर भारत का पुष्प कृषि का इतिहास अधिक पुराना नहीं, जबकि कुछ पश्चिमी देशों में पुष्प कृषि बहुत पहले से सुव्यवस्थापित व्यवसाय बन चुका था। आज भी पुष्प का विश्व व्यापार कुछ ही देशों—मुख्यत: हॉलैंड, कोलम्बिया, इटली आदि में केंद्रित है। धीरे-धीरे इजराइल, केन्या आदि देश भी पुष्प बाजार में प्रवेश कर रहे हैं। हॉलैंड विश्व पुष्प कृषि के 65 प्रतिशत भाग पर आज भी नियंत्रण किए हुए है। दूसरी ओर अमेरिका, फ्रांस, इटली, स्विट्जरलैंड, जापान और इंग्लैंड विश्व के सबसे बड़े पुष्प उपभोक्ता देश हैं जिनकी प्रति वर्ष पुष्प की मांग करोड़ों अमरीकी डालर की है। भारत के आर्थिक सुधार कार्यक्रमों में पुष्प कृषि को विशेष महत्व दिया गया है ताकि न केवल स्थानीय रूप से उसके द्वारा रोजगार उपलब्ध हो अपितु विदेशी मुद्रा भी अर्जित की जा सके। धीरे-धीरे पुष्प की असंगठित कृषि संगठित क्षेत्र की ओर बढ़ रही है। पुणे, बंगलौर और हैदराबाद पुष्प कृषि के केन्द्रीय स्थल बन गए हैं।

हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर और उत्तरांचल में व्यावसायिक स्तर पर पुष्प कृषि को अपनाया जा रहा है। हिमाचल प्रदेश में 1980 में पौधारोपण मात्र 5 हेक्टेयर भूमि पर किया गया था। आज यहां 100 हेक्टेयर से भी अधिक भूमि पर 1500 से अधिक कृषक पुष्प कृषि में संलग्न हैं। सिरमौर, सोलन, कुल्लू, चॉयल, कांगड़ा जिलों में धीरे-धीरे लिली, ट्यूलिप, ग्लेडियोली, मेरीगोल्ड किस्म के फूलों की कृषि आरंभ की जा रही है। कांगड़ा जो अब तक अपनी चाय और पेंटिंग्स के लिए ही प्रसिद्ध था, अब धीरे-धीरे पुष्प कृषि के लिए जाना जा रहा है। उत्तरांचल मूलत: फलों की बागवानी के लिए जाना जाता है, जहां सेब, माल्टा, लीची, नाशपाती, अखरोट, आम, अंगूर और खुबानी की खेती होती है। इस राज्य में पुष्प कृषि का बड़े पैमाने पर विस्तार हो रहा है। अब तक इस दृष्टि से यह एक अजनबी राज्य माना जाता था।

जम्मू-कश्मीर में लगभग 5 लाख परिवार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बागवानी में लगे हुए हैं। मूलत: यहां सेब मुख्य फसल है लेकिन इसके साथ-साथ नाशपाती, खुबानी, आलू बुखारा, आड़ू, बादाम एवं अखरोट की भी खेती होती है जिससे राज्य को 250 करोड़ रुपये की वार्षिक आय प्राप्त होती है। जम्मू-कश्मीर राज्य में पुष्प कृषि को भी धीरे-धीरे अपनाया जा रहा है। कर्नाटक धीरे-धीरे बागवानी का प्रमुख केन्द्र बन रहा है। यहां से गुलाबी प्याज व नाइजर तिलहन बड़े पैमाने पर निर्यात होता है। अब कर्नाटक पुष्प कृषि में भी तेजी से आगे बढ़ रहा है।

व्यावसायिक स्तर पर भारत में पुष्प कृषि की अपरिमित संभावनाएं हैं क्योंकि यहां श्रम सस्ता एवं सुलभ है। दूसरे, यहां की भूमि भी पर्यावरणीय दृष्टि से

मेरी गोल्ड

पुष्प कृषि योग्य है। आठवीं पंचवर्षीय योजना में पुष्प कृषि को व्यावसायिक स्तर पर अपनाने के लिए 10 मॉडल केन्द्रों की स्थापना मोहाली, कोलकाता, लखनऊ, बंगलौर, श्रीनगर, तिरुअनंतपुरम, गंगटोक, पुणे और शिमला में की गई। इसका उद्देश्य इन क्षेत्रों में पुष्प कृषि के मॉडल केन्द्रों की स्थापना करना तथा स्थानीय पुष्प कृषकों के लिए आवश्यक सुविधा जुटाना तथा साथ ही ग्रीन हाउस की स्थापना करना तथा कृषकों को पर्याप्त प्रशिक्षण देना है। पुष्प कृषि लाभकारी है क्योंकि इनकी वार्षिक अंतर्राष्ट्रीय मांग 15 से 30 प्रतिशत है। यदि हम पुष्प कृषि के अंतर्राष्ट्रीय बाजार की ओर नजर डालें तो पता चलेगा कि यह 15,000 करोड़ रुपये का है जिसमें अधिकांश भाग (60 प्रतिशत) पुष्पों का है। धीरे-धीरे फूलों के प्रति व्यक्ति उपभोग बढ़ रहा है। भारत में 1995 तक फूलों की आंतरिक मांग नगण्य थी जो अब बढ़ रही है। हॉलैंड स्थित पुष्प कौंसिल का अनुमान है कि आने वाले 10 वर्षों में फूलों की मांग 15 से 40 प्रतिशत प्रति वर्ष बढ़ेगी। इसमें शक नहीं कि भारत फूलों की बढ़ती विश्व मांग का एक बड़ा हिस्सा अपने कब्जे में कर सकता है। लेकिन यह इतना आसान नहीं है क्योंकि इसके लिए समन्वित पुष्प कृषि कार्यक्रम की आवश्यकता है।

पुष्प निर्यात की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण घटक संबंधित निर्यातक देशों की भौगोलिक स्थिति, जलवायु, श्रम लागत, कच्चे माल की उपलब्धि तथा विनियोग का वातावरण है। हॉलैंड विश्व की सबसे बड़ी पुष्प मंडी है और चूंकि पुष्प शीघ्र नाशवान है इसलिए जो फूल-उत्पादक देश भौगोलिक दृष्टि से हॉलैंड के नजदीक हैं उन्हें निर्यात का अधिक मूल्य मिल सकता है। केन्या को फूल निर्यात का सबसे बड़ा लाभ इसलिए मिल रहा है क्योंकि वह भौगोलिक दृष्टि से लाभ की स्थिति में है। भारत में श्रम लागत का लाभ है, लेकिन केन्या की तुलना में भौगोलिक दूरी अधिक है। हाल का एक सर्वेक्षण इस बात की ओर इशारा करता है कि इटली, स्पेन, केन्या, हॉलैंड तथा कोलम्बिया का पुष्प बाजार अनेक विरोधी घटकों से प्रभावित है जैसे ऊंची परिवहन तथा श्रम लागत, गैर-अनुकूल जलवायु, कच्चे माल के अभाव (जैसे जल, कृत्रिम रसायनिक खाद तथा कीटघ्न) तथा विनियोग की लागत में तेजी से हो रहे उच्चावचन। इसका लाभ थाइलैंड, मलेशिया, इजराइल तथा स्वयं भारत को मिल सकता है। लेकिन पुष्प कृषि का पेशेवर बनने के लिए यथोचित प्रशिक्षण की आवश्यकता है। अभी तक यह हमारे लिए नया क्षेत्र है। ग्रीन हाउस की स्थापना से लेकर निर्यात तक का सफर तय करने के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण आवश्यक है। फूलों का निर्यात सामान्य वस्तु के निर्यात से भिन्न है। भारत में स्थित हॉलैंड के कुछ पुष्प संस्थान भारतीयों को प्रशिक्षण देने में लगे हैं जिन्हें बाद में हॉलैंड में 'आन द जॉब' प्रशिक्षण दिया जाएगा।

पुष्प विपणन इतना आसान कार्य नहीं है। फूल नाशवान होने के कारण इनका समय पर निर्धारित विदेशी मंडियों तक पहुंचना आवश्यक है। एयर इंडिया द्वारा वसूला जा रहा हवाई भाड़ा न केवल अधिक है अपितु यान में फूलों के लिए निर्धारित स्थान भी नहीं है। दूसरे, भारत के हवाई अड्डों से फूल की मंडियों (अम्सटरडम तथा कोपन हैगन) तक के लिए सीधी वायु सेवा भी उपलब्ध नहीं है, जिसकी अविलम्ब आवश्यकता है। दूसरी ओर फूल उत्पादन संबंधी समस्याएं भी आड़े आ रही हैं। आयातित बीज तथा पौधारोपण सामग्री समय पर न मिलने के कारण गंभीर समस्या पैदा करती है। भारत में पुष्प कृषक को अभी तक परिष्कृत उपकरण, कृषि रसायन तथा तकनीकी ज्ञान भी यथोचित मात्रा एवं स्वरूप में उपलब्ध नहीं है। भारत में पुष्प निर्यात की अपरिमित संभावनाएं तो हैं लेकिन समन्वित कृषि कार्यक्रम के अभाव में उसका पूरा लाभ हमें नहीं मिल पा रहा है। ❑

(लेखक श्री अग्रसेन गर्ल्स कालिज, भरतपुर में प्राचार्य रह चुके हैं।)

भारत का गौरव—कालिंजर दुर्ग

○ पीयूष मिश्र

कालिंजर दुर्ग भारत के ऐतिहासिक दुर्गों में से एक है। यह एक ऐसा दुर्ग है जिसने भारतवर्ष पर शासन करने वाले कई शासकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। यह दुर्ग कई शासकों के उत्थान और पतन का गवाह रहा है, किंतु दुख इस बात का है कि एक लंबे समय से यह ऐतिहासिक दुर्ग अपने पतन के मकड़जाल में जकड़ा हुआ है जिसका प्रमुख कारण है सरकार एवं पर्यटन विभाग का उपेक्षात्मक रवैया।

कालिंजर दुर्ग उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र में स्थित है। यह चित्रकूट धाम मंडल के बांदा जिले की नरैनी तहसील में अवस्थित है, जिसे प्रारंभिक समय से ही बुंदेलखंड के अजेय दुर्ग की संज्ञा दी गई है। विश्वविख्यात कालिंजर दुर्ग बांदा से 58 कि.मी. दूर नरैनी पन्ना अजयगढ़ मार्ग पर स्थित है। यह इलाहाबाद से 90 मील पश्चिम एवं रींवा से 60 मील उत्तर-पश्चिम में विध्यन शृंखला की चोटी पर 800 फीट की ऊंचाई पर है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

कालिंजर भारत का एक प्राचीन गौरव है। कालिंजर की प्राचीनता एवं ऐतिहासिकता के विषय में इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि इसका उल्लेख वेदों एवं महाभारत में आता है। पद्मपुराण में उत्तरी भारत के 9 पवित्र नगरों में से एक 'कालिंजर' को माना गया है। किंदवती है कि जब भगवान शंकर ने समुद्र मंथन से उत्पन्न हलाहल का पान किया तो वे उसके प्रभाव को शांत करने के लिए यहीं आए थे।

प्राचीन अभिलेखों के अनुसार कालिंजर दुर्ग का निर्माण चंदेल वंश के संस्थापक चंद्रवर्मा ने किया। कुछ विद्वान चंदेल वंश का संस्थापक राजा नुतुक को भी मानते हैं। सर्वप्रथम प्रामाणिक रूप से महमूद गजनवी ने चंदेल शासक गझडदेव के शासनकाल में दुर्ग पर आक्रमण किया जिससे यह आभास होता है कि यह दुर्ग अपनी राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के कारण प्रारंभिक अवस्था से ही महत्वपूर्ण रहा होगा। मुगलकाल में सन 1530 में हुमायूं ने कालिंजर पर आक्रमण कर इसे जीता, परंतु किंचित कारणवश इस पर अपना अधिकार नहीं किया। तत्पश्चात सन 1545 में शेरशाह सूरी ने इस पर आक्रमण किया और इसे अपने अधिकार में ले लिया। परंतु कालिंजर दुर्ग में ही अपरिहार्य कारणवश उसका निधन हो गया तथा दुर्ग पुन: क्षेत्रीय राजाओं के अधीन हो गया। मुगल बादशाह अकबर के शासनकाल के आरंभिक दिनों में दुर्ग पर बघेल राजा रामचंद्र का अधिकार था जिसे उसने 1569 में अकबर को भेंट कर दिया। इस प्रकार यह दुर्ग 120 वर्षों तक मुगल शासकों के अधीन रहा। समय परिवर्तन हुआ, क्षेत्रीय एकता की वजह से वीर बुंदेला राजा छत्रसाल ने औरंगजेब के शासन में किले पर पुन: अधिकार कर लिया और सामाजिक समरसता स्थापित की। बाद में कालिंजर हरदेव शाह के अधीन पन्ना राज्य का अंग बन गया। कालान्तर में यह दुर्ग दो ब्राह्मण भाइयों गंगाधर एवं दरियाव के कब्जे में आ गया। भारत में ब्रिटिश शासनकाल में भी कालिंजर दुर्ग अपनी सामरिक महत्ता के कारण पहचाना गया और इसी कारण ब्रिटिश सेना के कर्नल मार्टिन डॅल ने सन 1812 ई. में दुर्ग पर आक्रमण कर उसे अपने कब्जे में ले लिया। इस दुर्ग ने स्वतंत्रता की लड़ाई में भी अपना सहयोग दिया और देशभक्तों के लिए सदा प्रेरणा स्रोत बना रहा।

कालिंजर दुर्ग नि:संदेह गौरवमयी है जिसने अपने जीवनकाल में न जाने कितने थपेड़े सहे हैं। यहां के स्तंभों को देखकर इसकी गौरवशाली प्राचीनता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

दर्शनीय स्थल

वैसे तो प्रत्येक दुर्ग का अपना एक गौरवमयी इतिहास है। परंतु कालिंजर दुर्ग अपनी विशिष्टिता और अनोखेपन के कारण सदैव प्रसिद्ध रहा है। धार्मिकता, आकर्षक कलाकृतियां एवं शौर्य और वीरता की अनगिनत गाथाओं को अपने हृदय में समेटे यह दुर्ग मनोरम हरियाली छटा से घिरा हुआ है। कालिंजर दुर्ग में दो प्रवेश द्वार हैं। मुख्य द्वार उत्तर की ओर है जहां से पर्यटक दुर्ग के अंदर प्रवेश करते हैं। द्वितीय द्वार पन्ना की ओर है, जिसे 'पन्ना गेट' भी कहते हैं जो कि वर्तमान में बंद रहता है। दुर्ग के उत्तरी भाग में चार दर्शनीय स्थल हैं; सीताकुंड, पातालगंगा, पांडुकुंड एवं सीतासेज जबकि पश्चिमी भाग में नीलकंठ मंदिर है जो अति प्राचीन है। यह एक छोटी गुफा में स्थित है। इसमें सुंदर मंडप के अलावा दरवाजों में शिव-पार्वती की मूर्तियां एवं गंगा-यमुना के दृश्य हैं। इन कृतियों को गुप्तकाल के समय निर्मित बताया जाता है जबकि खंभे चंदेलकाल के बताए जाते हैं। शिवलिंग काले एवं नीले पत्थर का बना है, जिसकी ऊंचाई साढ़े चार फीट है। (यह स्थान शताब्दियों से शैव अनुयायियों का आराधना-स्थल रहा है। यहां धार्मिक आस्था का कुंड है, जो नीला है। किंदवती है कि विषपान पश्चात भगवान शंकर विष के प्रभाव को शांत करने के लिए इस विशाल कुंड में लेट गए थे।) कालिंजर में बहते झरने के पानी के स्रोत भी हैं। इसके अलावा यहां प्रति वर्ष कार्तिक पूर्णिमा का मेला भी लगता है जिसमें काफी दूर-दूर तक से श्रद्धालुजन आते हैं।

ऐतिहासिक दुर्ग की उत्तर दिशा में सदियों पुराना कल्पवृक्ष का जोड़ा भी है जिसकी श्रद्धालु कार्तिक पूर्णिमा के मेले में परिक्रमा कर अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति करते हैं।

कालिंजर दुर्ग अपनी ऐतिहासिक एवं धार्मिक विशिष्टताओं के बावजूद उपेक्षित है जिसके कारण यह प्रसिद्ध दुर्ग दिन-प्रति-दिन एक भग्नावशेष का रूप धारण करता जा रहा है। यह दुर्ग सिर्फ बांदा जिले का गौरव नहीं, अपितु पूरे प्रदेश एवं देश का गौरव है और हमारी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति का प्रतीक है। इस ऐतिहासिक दुर्ग की उपेक्षा का एक प्रमुख कारण क्षेत्रीय पिछड़ापन भी है जिससे यह मात्र स्थानीय ग्रामीणों की भावनाओं तक सीमित रह गया है।

प्रशासनिक एवं पर्यटन विभाग के सौतेले व्यवहार की वजह से कालिंजर दुर्ग देशी एवं विदेशी पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करने में असफल रहा है। इस ऐतिहासिक दुर्ग के लिए यह दुखद है कि इसके समीपवर्ती क्षेत्रों में स्थित चित्रकूट एवं खजुराहो जहां पर्यटकों को खासा आकर्षित करते हैं वही यह प्राचीन स्थल एक अभिशापित दुर्ग की भांति प्रतीत होता है। अत: सर्वप्रथम हमें इस ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्व के दुर्ग में बुनियादी सुविधाओं का विकास करना होगा और ठोस नीतियों के क्रियान्वयन को गतिशीलता देनी होगी जिससे यह उपेक्षित दुर्ग विश्व पर्यटन मानचित्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा सके। कालिंजर दुर्ग नि:संदेह हमारी भावनाओं का प्रतीक है और हमारी गौरवशाली प्राचीनता का परिचायक है। विश्व से इसका परिचय पर्यटन के माध्यम से ही कराया जा सकता है। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

लेखकों से अनुरोध

कृपया अपने लेख टाइप करा कर दो प्रतियों में भेजें तथा साथ में टिकट लगा लिफाफा अवश्य संलग्न करें। लेख पर दो से अधिक लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों पर ही दें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाण-पत्र संलग्न नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार न करें। विशेष अवसरों के लिए लेख तीन माह पूर्व प्राप्त हो जाने चाहिए। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। सभी रचनाएं 'संपादक, योजना' के नाम प्रेषित करें।

पर्यावरण में सीसे की बढ़ती सान्द्रता और मानव स्वास्थ्य

दिनेश मणि

एक वयस्क व्यक्ति के 100 ग्राम रक्त में सीसे की 80 माइक्रोग्राम की मात्रा सुरक्षित मानी जाती है। अध्ययनों से पता चला है कि पारे और कैडमियम की भांति सीसा भी एक संचयी प्रभाव वाला विष है। लेखक का कहना है कि उपयोग में कमी लाने के साथ-साथ यदि भोजन में कैल्शियम और विटामिन सी की मात्रा बढ़ा दी जाए तो इसके दुष्प्रभावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

हमारे देश सहित कई विकासशील देशों में सीसा प्रदूषण का कारण यातायात की बढ़ती समस्या भी है। बढ़ते यातायात की समस्या से वायु प्रदूषण की समस्या कई देशों में गंभीर होती जा रही है। हवा को प्रदूषित करने में सीसा एक प्रमुख कारण है। वैज्ञानिकों के अनुसार सीसा बच्चों को जल्दी नुकसान पहुंचाता है। हमारे शरीर का जैसे-जैसे विकास होता है, वह सीसे के विनाशकारी प्रभावों के प्रति प्रतिरोध विकसित कर लेता है। इसलिए एक वयस्क व्यक्ति के 100 ग्राम रक्त में सीसे की 80 माइक्रोग्राम की मात्रा सुरक्षित मानी जाती है। सीसे का कभी क्षय नहीं होता। यह जीवन भर शरीर में जमा रह सकता है और इसकी अधिकता वयस्क शरीर के अवयवों को भी हानि पहुंचा सकती है।

सीसे की विषाक्तता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि सीसे से कलई कई गए बर्तनों के अत्यधिक इस्तेमाल के फलस्वरूप प्राचीन रोमवासी कम आयु में ही मौत के मुंह में चले जाते थे। अभी हाल ही में नेशनल वाटर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कनाडा के डॉ. जेरोम नृयागू ने इन पूर्ववर्ती समाचारों की पुष्टि की कि अपने समय के महान शक्तिशाली रोम साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण सीसे से उत्पन्न विषाक्तता थी। डा. नृयागू ने प्राचीन अभिलेखों का जो सूक्ष्म विश्लेषण किया, उससे पता चला कि रोम का अभिजात वर्ग गठिया से पीड़ित था और क्रमशः उसका मानसिक ह्रास होता चला गया। इसके अलावा बाद में जो हड्डियां खोदकर निकाली गई, उनमें सीसे की भारी मात्रा पाई गई। इस असामान्यता का कारण यह बताया गया है कि कुलीन रोमवासी जब अपने लिए शराब बनवाते थे तो वे अंगूर के रस को सीसे की पालिश वाले बर्तन में उबलवाते थे। सीसा उन्हें बला की आकर्षक सुगंध और मोहक मधुरता प्रदान करता था। यह अति सुगंधित शराब अति सुस्वाद व्यंजनों में भी डाली जाती थी।

भारत में तमिलनाडु में रसम तैयार करने वाले बर्तन 'ईया चोम्बु' (सीसे का लोटा) में सीसा भारी मात्रा में पाया गया है। अतः इसका उपयोग नहीं करने की सलाह देनी चाहिए। वर्ष 1977 में आंध्र प्रदेश के गुन्टूर जिले के मलप्पाडु नामक ग्राम के मवेशी सीसे की विषाक्तता से दुष्प्रभावित हुए थे। मवेशियों को सीसा मिले रसायनों से प्रदूषित जल पीने के कारण यह बीमारी हो गई थी। हुआ यह था कि उपर्युक्त ग्राम के निकट की नदी में एक रासायनिक कारखाने द्वारा उक्त रसायन छोड़ दिए जाते थे और मवेशी इस नदी का जल पिया करते थे। परिणामस्वरूप कई पशुओं की जानें चली गई थीं।

वस्तुतः लैड या सीसा संचयी विष है। दैनिक मात्रा थोड़ी होने पर भी लंबे समय में सीसे का काफी संचय हो जाता है। यह पात्रों, मिट्टी और पानी के पाइपों से पर्यावरण में आता है। अनुमानतः प्रतिदिन भोजन से मनुष्य को 0.2 से 0.25 मि.ग्रा. सीसा मिलता है। जल के माध्यम से प्रति लीटर 0.1 मि.ग्रा. सीसा शरीर में पहुंचता है। मृदु तथा अम्लीय जल में यह मात्रा अधिक हो सकती है।

शहरों में वाहनों के पैट्रोल से निकला सीसा वायुमंडल में व्याप्त रहता है। इंजनों की कार्यक्षमता बढ़ाने के उद्देश्य से जब 1920 के दशक में 'एण्टी-नॉकिंग एजेंट' के रूप में पहले-पहल पैट्रोल में टेट्रा इथाइल लैड मिलाया गया था तो किसे पता था कि सीसा इतने बड़े पैमाने पर पर्यावरण और खाद्य पदार्थों के प्रदूषण का कारण बनेगा। आर्गेनो लैड यौगिक कीटनाशी के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसके अतिरिक्त स्टोरेज बैटरी, रंग-रोगन, रंजक द्रव्यों, कनस्तरों/डिब्बों के जोड़ जोड़ने इत्यादि में लैड के यौगिकों का प्रयोग होता है।

अध्ययनों से पता चला है कि पारे और कैडमियम की भांति सीसा भी संचयी प्रभाव वाला विष है। यदि एक बार उसका अवशोषण हो जाए तो वह शरीर में जमा होने लगता है। प्रविष्ट होने वाले सीसे में से कुछ जिगर और पित्तवाहिनी के रास्ते पुन: जठरान्त्रिक मार्ग में लौट सकता है। शेष सीसा जिगर से गुजरने के बाद रक्तधारा में मिल जाता है और शरीर के समूचे ऊतकों तक पहुंच जाता है। सीसा प्रोटीन से तुरंत मिल जाता है। इस तरह प्रोटीन रक्त में सीसा पहुंचने में सहायक होता है। शरीर में जो सीसा रह जाता है, उसका अधिकांश अंतत: खनिज हड्डी में बस जाता है, जहां वह आंशिक रूप से कैल्शियम का स्थान ले लेता है। अत: कुल सीसे की मात्रा का शरीर के ऊतकों में कोई संतुलित वितरण नहीं होता। उसकी सबसे अधिक मात्रा (7-11 पी.पी.एम.) हड्डी में पाई जाती है। उससे कम जिगर और गुर्दे में (2 पी.पी.एम.) पाई जाती है। दिमाग, दिल और मांसपेशी के ऊतकों में उसकी अति अल्प मात्रा (0.01 पी.पी.एम.) होती है। शरीर में सीसे की मात्रा जन्म के बाद बढ़ती ही जाती है। संभवत: दिमाग और स्नायु के ऊतकों में जीवन के प्रथम बीस वर्षों में और हड्डियों में कोई 40 वर्ष के बाद अपने उच्चतम स्तर पर पहुंच जाती है। सीसा गर्भनाल में भी प्रवेश कर सकता है।

सीसे के संचयी प्रभाव सामान्यत: तीन प्रकार की शारीरिक कोशिकाओं में देखे जाते हैं। वे हैं : दिमाग और स्नायु की कोशिकाएं, गुर्दे की कोशिकाएं और लाल रक्त कोशिकाएं। सहनशील स्तरों से परे सीसा दिमाग और स्नायु की तथा गुर्दे की कोशिकाओं में असाध्य परिवर्तन करता है। वयस्कों के मुकाबले बच्चों के दिमाग तथा स्नायु की कोशिकाओं में सीसा अधिक मात्रा में पहुंचता है। यही कारण है कि सीसा सदा ही बच्चों के केन्द्रीय स्नायुतंत्र को प्रभावित करता है और वयस्कों मे प्राथमिक प्रभाव गुर्दे और जिगर पर होते हैं।

अनुसंधानों से पता चला है कि सीसे की मामूली-सी मात्रा भी जैव-सामग्री को इस प्रकार प्रभावित करती है कि वह अपना सामान्य कार्य नहीं कर सकती। सीसा कोशिकाओं की रचनान्तर क्रिया में बाधा डालता है। विशेषत: हीमोग्लोबिन संयोजन पर इसका प्रभाव पड़ सकता है क्योंकि सीसा रक्त के ऑक्सीजनवाही पिगमेंट 'हीम' के निर्माण के लिए आवश्यक एन्जाइमों की क्रिया में बाधा डालता है। सीसे के कारण जो रक्ताल्पता होती है, उसका सीधा संबंध हीमोग्लोबिन के संयोजन में कमी से है।

अमेरिका की पर्यावरण संरक्षण एजेंसी के शोध वैज्ञानिकों ने सीसे पर स्वास्थ्य संबंधी आंकड़ों का जो पुनरावलोकन किया है उससे प्राप्त प्रमाण यह प्रमाणित करने में सक्षम हैं कि सीसे की कम मात्रा भी अनेक प्रच्छन्न शारीरिक प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप कर सकती है। साथ ही यह भी पता चला है कि सीसे की कम मात्रा भी विटामिन डी की रचनान्तर क्रिया में बाधक होती है। विटामिन डी की इस क्रिया में कमी आ जाने से शरीर सीसे को अधिक मात्रा में सोख सकता है और यह दुश्चक्र इस धातु के प्रतिकूल प्रभावों को द्विगुणित कर सकता है।

यह भी पता चला है कि सीसे की कम मात्रा भी विटामिन डी की रचनान्तर क्रिया में बाधक होती है। विटामिन डी की इस क्रिया में कमी आ जाने से शरीर सीसे को अधिक मात्रा में सोख सकता है और यह दुश्चक्र इस धातु के प्रतिकूल प्रभावों को द्विगुणित कर सकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि सीसाजनित विषाक्तता को कैसे दूर किया जाए। इसका पहला उत्तर तो यह है कि सीसे के उपयोग को कम से कम करके इस दिशा में 'बचाव ही इलाज है', की अवधारणा का प्रचार-प्रसार किया जाए। दूसरा यह कि सीसा-विषाक्तता हो जाने की स्थिति में भोजन में कैल्शियम तथा विटामिन सी की मात्रा बढ़ाकर इसके हानिकारक प्रभाव से बचा जा सकता है।

अनुसंधानों से पता चला है कि जिस भोजन में कैल्शियम, प्रोटीन, विटामिन सी, ई.बी-कॉम्पलेक्स (नियासिन) और आयोडीन जैसे तत्वों की कमी रहती है, वह सीसे के अवशोषण में वृद्धि कर सकता है। अत: संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि चोकरदार आटे, छिलके वाले अनाज, दालों, दूध, पनीर, हरी सब्जियों के सेवन से सीसे की विषाक्तता से बचा जा सकता है। ❑

(वरिष्ठ प्रवक्ता, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।)

स्वास्थ्य-चर्चा

जैविक हथियार से उत्पन्न बीमारियां लक्षण, प्रभाव एवं बचाव

○ गणेश कुमार पाठक

जब से अमेरिका ने तालिबान के खिलाफ युद्ध छेड़ा है, जैविक हथियारों से हमले की चर्चा जोरों पर है। अमेरिका में तेरह लोगों के इसके प्रभाव में आ जाने के बाद यह चर्चा और गरम हो गई है। वास्तव में ये जैविक हथियार हैं क्या? जैविक हथियार से किन-किन बीमारियों का जन्म होता है, उनके क्या लक्षण हैं एवं उनसे बचाव कैसे किया जा सकता है, इन सभी बातों का खुलासा इस लेख में किया गया है।

वास्तव में जैविक हथियार गंभीर रोगों के जीवाणुओं (रोगाणुओं) का वह कहर है जो मनुष्य द्वारा मनुष्य तक बहुत खामोशी से पहुंचा दिया जाता है। इन जीवाणुओं को हवा एवं जल के माध्यम से फैलाया जा सकता है। जैविक हथियार खतरनाक एवं लाइलाज रोगों के रोगाणुओं का ऐसा सीधा हमला है जो दुश्मन की सीमा पर या सीमा में घुसकर किया जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि जैविक हथियार दूरगामी मार करते हैं एवं इसका प्रभाव पीढ़ी-दर-पीढ़ी चल सकता है। जैविक हथियारों को छोड़ने के तरीकों को आसानी से नहीं पकड़ा जा सकता। एयरकंडीशनर के झरोखों में पंखों के पास रखे जाने पर यह आसानी से बड़ी इमारतों में काम कर रहे कर्मचारियों को अपना निशाना बना सकता है। वायु एवं जल में फैलकर ये जैविक रोगाणु तेजी से अपना प्रभाव दिखाने लगते हैं और जब तक इन्हें रोकने की कोशिश की जाती है, स्थिति नियंत्रण से बाहर हो जाती है। जैविक हथियार को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना भी तुलनात्मक रूप से सुगम होता है। साथ ही जैविक हथियार बहुत सस्ते होते हैं।

जैविक हथियार पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपना प्रभाव दिखा सकता है। इसकी अत्यल्प मात्रा भी लाखों-करोड़ों लोगों को मार सकती है, जैसे, इंफ्लुएंजा विषाणु की मात्र एक माइक्रो मिलीग्राम मात्रा ही एक लाख आबादी को बरबाद करने के लिए पर्याप्त हैं। इसी तरह का एक घातक बैक्टीरिया है 'परसिनिया पेस्टीस' जो जैविक आतंक का खास हथियार है। यह विषाणु मनुष्य एवं पशुओं के खून में त्वचा के रन्ध्रों के जरिए पहुंचता है तथा रक्त में न्यूट्रोफिल्स एवं मोनोसाइट्स को नष्ट कर डालता है। प्लेग फैलाने के लिए भी यही बैक्टीरिया जिम्मेदार माना जाता है। एक दूसरा विषाणु है 'फ्रानसिसेला टुलारेनसिस'। यह जीवाणु पशुओं एवं गंदगीयुक्त जल में अपना जीवन-चक्र पूरा करता है और टाइफाइड फैलाता है। यही नहीं वैस्सीनिया, हीमोरेजिया, फीवर वायरस, पॉक्स वायरीडी आदि ऐसे जैविक हथियार हैं, जिनसे चेचक, चिकन पॉक्स, हीमोरेजिया बुखार जैसे गंभीर रोग फैलते हैं।

जैविक हथियारों को और कारगर बनाने हेतु अनेक देशों ने कीटाणु-विष भी तैयार कर लिए हैं। अब तक ज्ञात कीटाणु विषों में 'बोईलिनम' नामक कीटाणु-विष सबसे खतरनाक माना गया है। वैज्ञानिकों के अनुसार इस विष की एक मिलीग्राम मात्रा पूरे विश्व को बरबाद करने के लिए पर्याप्त है। परीक्षणों के दौरान देखा गया है कि इस कीटाणु की चपेट में आने वाला जीवधारी तेजी से उल्टियां करने लगता है, शरीर में शिथिलता आ जाती है एवं सांस लेने में भी कठिनाई होने लगती है। अंततः उसकी मृत्यु हो जाती है। इसी तरह का एक और कीटाणु रोग है—बुसेलोसिस। इसके चपेट में आने से शरीर के तापमान में तीव्र गति से वृद्धि होती है, शरीर में शिथिलता आ जाती है एवं दिल धड़कना बंद कर देता है। इस तरह का एक जैविक रोगाणु ''सीडोमोनस'' है जिसे तालाब की मिट्टी एवं चावल के कीड़े, आदि से सुगमतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। इस रोगाणु से सेप्टीसीमिया नामक त्वचा रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

बीमारियां

जैविक हथियारों के प्रयोग से खास तौर से एंथ्रेक्स, बोतुलिज्म, वायरल बुखार, चेचक, प्लेग एवं टुलारोमिया आदि भयंकर बीमारियां जन्म लेती हैं।

यहां इन बीमारियों के लक्षण, प्रभाव एवं बचाव की संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत है:

एंथ्रेक्स—एंथ्रेक्स नामक बीमारी के रोगी न केवल अमेरिका अपितु भारत में भी पाए गए हैं। अपने देश में इसका प्रभाव आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, उड़ीसा एवं कर्नाटक राज्यों में देखने को मिलता है। अपने देश में 1999 में इससे पांच लोगों की मौत हो चुकी है।

एंथ्रेक्स नामक यह बीमारी 'बेसिलस एंथ्रेसिस' नामक बेक्टीरिया से फैलती है। इसके प्रभाव से शरीर के अंदर रक्तस्राव होने लगता है। यदि एंथ्रेक्स के बैक्टीरिया श्वांस के साथ या भोजन के जरिए शरीर में पहुंच जाते हैं तो रोगी की मौत की संभावना 95 प्रतिशत तक रहती है। बैक्टीरिया त्वचा के जरिए शरीर में प्रवेश करता है तो मृत्यु की संभावना 25 प्रतिशत तक रहती है।

एंथ्रेक्स के रोगाणु पहले सुप्तावस्था में होते हैं किन्तु जैसे ही इन्हें सक्रिय होने लायक वातावरण प्राप्त होता है ये तेजी से फैलने लगते हैं। यदि श्वास के साथ प्रविष्ट रोगाणु श्वांस नली में ऊपर ही रह जाते हैं तो कम खतरनाक होते हैं, किन्तु अत्यधिक सूक्ष्म रोगाणु फेफड़ों के द्वार तक पहुंच पाते हैं।

शरीर का प्रतिरोधी तंत्र यद्यपि कुछ रोगाणुओं को मार डालता है, बचे रोगाणु सीने तक पहुंच जाते हैं। ये एक से साठ दिन में सक्रिय हो जाते हैं। फिर तेजी से फैलते हुए सीने से ऊतकों को हानि पहुंचाने लगते हैं। तत्पश्चात ये रोगाणु खून में जहर फैला देते हैं। फेफड़ों में जहर फैलने से रक्तस्राव प्रारंभ हो जाता है एवं ऊतकों की मौत के साथ ही शरीर भी मौत की तरफ अग्रसर हो जाता है।

एंथ्रेक्स के बैक्टीरिया रोगाणु विकसित करते हैं जो आमतौर पर मिट्टी में या पशु उत्पादों में सुसुप्त अवस्था में पाए जाते हैं। सुसुप्तावस्था में इनके रहने की अवधि 100 वर्ष से भी अधिक हो सकती है।

प्राय: एंथ्रेक्स जानवरों के संपर्क में आने के कारण फैलता है। कारण कि एंथ्रेक्स के रोगाणु मिट्टी में या पालतू पशुओं में, खासतौर से बकरी, भेड़ आदि के बालों में एवं उनकी खालों में विकसित होते हैं। साधारणत: एंथ्रेक्स के रोगाणु शरीर की कटी त्वचा के माध्यम से शरीर में प्रवेश करते हैं किन्तु यदि व्यक्ति ऐसे पशु का मांस खाए जिसमें एंथ्रेसिस के बैक्टीरिया के रोगाणु विद्यमान हों या फिर वह इन रोगाणुओं वाले वातावरण में श्वांस ले तो भी वह रोगाणु की चपेट में आ सकता है। मिसाइल, राकेट या किसी भी दूसरे यंत्र से हवा में इसका छिड़काव किया जा सकता है।

लक्षण एवं उपचार

एंथ्रेक्स के लक्षण फ्लू के समान होते हैं। यही कारण है कि प्रारंभ में इस बीमारी को समझना कठिन होता है। जब रोग पकड़ लेता है तो रोगी को बुखार आना प्रारंभ हो जाता है, थकान महसूस होने लगती है, खांसी प्रारंभ हो जाती है एवं श्वांस में भी कठिनाई होने लगती है।

जैसे-जैसे शरीर में रोगाणु फैलते हैं, शरीर के अंदर रक्तस्राव होने लगता है, सीने में दर्द प्रारंभ हो जाता है, फेफड़े सड़ने लगते हैं और शीघ्र रोगी की मृत्यु हो जाती है। रोगाणु मस्तिष्क को भी प्रभावित करते हैं।

एंथ्रेक्स के लक्षण पता लगने की समय सीमा निश्चित नहीं है। कम से कम 12 घंटे में इसके लक्षण का पता लगाया जा सकता है कि रोगी व्यक्ति एंथ्रेक्स से पीड़ित है या नहीं, कभी-कभी लक्षण दो महीने बाद तक पता लगते हैं। लक्षण दिखाई देने के 24 से 30 घंटे के अंदर रोगी की मृत्यु हो सकती है।

एंथ्रेक्स से बचाव के लिए लंबे समय से पेनिसिलिन का प्रयोग होता आ रहा है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य एंटीबायटिक औषधियां भी इसके इलाज हेतु प्रयोग की जाती रही हैं किन्तु एंटीबायटिक दवाएं मात्र बीमारी के प्रारंभिक दौर में ही कारगर साबित होती हैं।

एंथ्रेक्स की बीमारी की रोकथाम हेतु टीका भी विकसित किया गया है, किन्तु इसका प्रयोग आमतौर पर सैनिकों के लिए ही किया जाता है। यह टीका भी यदि 18 महीने पूर्व लगाया गया हो तभी उसका असर हो सकता है।

एंथ्रेक्स के संबंध में लोगों में भ्रांति है कि यह छुआछूत का रोग है और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है। वैज्ञानिकों के अनुसार एंथ्रेक्स संक्रामक रोग नहीं है।

बोतुलिज्म—बोतुलिज्म भी जीवाणुओं से फैलने वाली एक खतरनाक बीमारी है। जहर से प्रभावित भोजन करने के 12 से 36 घंटों के भीतर इसका असर होने लगता है। इसके प्रभाव से आंखों में धुंधलापन छाने लगता है एवं आवाज लड़खड़ाने लगती है।

यदि विष की अधिक मात्रा शरीर में प्रवेश कर जाती है तो सांस लेने वाली मांसपेशियों को लकवा मार सकता है जिससे 24 घंटे के अंदर ही रोगी की मृत्यु हो जाती है।

अभी तक इस रोग के लिए किसी कारगर टीके का विकास नहीं हो पाया है। कुछ ऐसी दवाएं हैं जिनका सेवन तत्काल

किया जाए तो रोगी को आराम मिल सकता है और शरीर में पहुंचे विष को प्रभावहीन किया जा सकता है।

बोतुलिज्म रोग 'बोतुलिनम टॉक्सीन' से होता है जो बहुत कम मात्रा में खाया जाए तो भी जानलेवा हो सकता है। इस रोगाणु (जीवाणु) का प्रयोग कर पानी एवं भोजन को विषाक्त किया जा सकता है।

वायरल बुखार—वायरल बुखार कई तरह के होते हैं जैसे—एबोला, मारवर्ग आदि। अलग-अलग बुखार के अलग-अलग लक्षण होते हैं। 4 दिन पश्चात इसके लक्षण प्रकट होने लगते हैं और 4 से 7 दिन के बीच इसका प्रभाव दिखाई देने लगता है। आठवें दिन यह खतरनाक रूप ग्रहण कर लेता है।

वायरल में काफी तेज बुखार होता है, मांसपेशियों में दर्द होने लगता है, शरीर में कंपकपी आ जाती है, उल्टियां होने लगती है और छाती में तेज दर्द भी प्रारंभ हो जाता है।

वायरल बुखार में हमेशा मौत नहीं होती है, किन्तु रोगी को कष्ट होता है। किन्तु एबोना वायरस 90 प्रतिशत मामलों में खतरनाक होता है, जिसमें संक्रमण के एक सप्ताह पश्चात ही मौत हो जाती हैं।

वायरल बुखार में पीले बुखार एवं अरजेंटीनियन हैमरेज बुखार के अतिरिक्त किसी और हेमरेज बुखार के लिए टीका विकसित नहीं हो पाया है।

वायरल बुखार के खतरनाक जीवाणु कुछ ही प्रयोगशालाओं में हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार इन्हें भारी मात्रा में तैयार करना आसान नहीं है। एंथ्रेक्स एवं बोतुलिज्म की तरह वायरल का एबोला वायरस तभी खतरनाक होता है, जब सांस के जरिए शरीर में चला जाए।

चेचक—चेचक के लक्षण जीवाणु फैलने के 12 दिन पश्चात दिखाई देते हैं 13वें एवं 14वें दिन में इसका पूर्ण प्रभाव हो जाता है एवं 15वें दिन यह खतरनाक हो जाता है।

चेचक का प्रकोप होने पर तेज बुखार होता है, थकान होने लगती है एवं कमर-दर्द होने लगता है। ऐसा लक्षण दिखने के दो-तीन दिन बाद चेहरे, बांहों एवं टांगों पर दाने निकल आते हैं। इस बीमारी के पहले दो हफ्तों में ही 30 प्रतिशत रोगियों की मौत हो जाती है।

अपने देश में चेचक का टीकाकरण बंद कर दिया गया है, क्योंकि ऐसा मान लिया गया है कि भारत से यह बीमारी खत्म हो गई है। यद्यपि चेचक बहुत तेजी से फैलने वाली बीमारी है चूंकि इसका टीकाकरण बंद कर दिया गया है, इस स्थिति में यदि इसका प्रकोप फैलता है तो खतरनाक स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

प्लेग—प्लेग जीवाणु से फैलने वाली वह बीमारी है जिसमें रोगाणु फैलने के छह दिन के भीतर लक्षण दिखाई देने लगता है। प्लेग होने पर तेज बुखार होता है, सांस लेने में तकलीफ होती है, कंपकंपी पैदा हो जाती है, सिरदर्द होने लगता है तथा खांसी के साथ खून आने लगता है। लक्षण दिखाई देने के दो से चार दिन पश्चात रोगी की मृत्यु हो जाती है।

यद्यपि ब्यूबोनिक प्लेग के लिए टीका विकसित कर लिया गया है, किन्तु आसमान से बरसने वाले रोगाणुओं से बचाव के लिए कोई टीका विकसित नहीं हो सका है।

प्लेग का रोगी जब खांसता है तो वायु में विद्यमान वाष्पकणों के माध्यम से ये रोगाणु दूसरे व्यक्ति तक फैल जाते हैं। प्लेग के जीवाणु एक छोटी मक्खी के माध्यम से फैलते हैं, जो प्लेग से पीड़ित चूहों के रक्त से पोषण लेती हैं।

अभी भी वायु से आए प्लेग के जीवाणु से फैलने वाले प्लेग की रोकथाम नहीं हो पाती है, क्योंकि ये जीवाणु इतनी तेजी से फैलते हैं कि इलाज का समय ही नहीं मिलता है और रोगी की मृत्यु हो जाती है।

तुलारेमिया—इस रोग के जीवाणु 2 से 14 दिन के अंदर अपना असर दिखाने लगते हैं। इस रोग में शरीर में गांठ हो जाती है, सृजन आ जाती है, बुखार हो जाता है एवं निमोनिया भी हो जाता है। अगर समय पर इलाज न हो, तो 35 प्रतिशत मामलों में रोगी की मौत हो जाती है।

तुलारेमिया का टीका भी विकसित कर लिया गया है। साथ ही एंटीबायटिक दवाएं भी फायदा पहुंचाती हैं। रोग होने के कई दिन बाद भी इलाज हो तो रोगी ठीक हो सकता है।

तुलारेमिया के रोगाणु त्वचा से होकर रक्त में पहुंच जाते हैं। इस रोग में बिना इलाज के भी 65 प्रतिशत रोगी बच जाते हैं। तुलारेमिया के जीवाणु को वायुमंडल में फैलाकर प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैविक हथियार के रूप में प्रयोग किए जाने वाले जीवाणु (रोगाणु) प्रयोगशाला में विकसित कर बड़े पैमाने पर उत्पादित किए जाते हैं। हवा में फैलाने से ये जीवाणु व्यक्ति की श्वांस के साथ शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। आतंकवादी बड़ी संख्या में लोगों को मारने के लिए एंथ्रेक्स या इसी तरह की बीमारियों के रोगाणुओं को वायु में किसी न किसी तरह फैलाकर आतंक फैला सकते हैं। इन्हें वायु में फैलाने के लिए छिड़काव यंत्रों का भी प्रयोग किया जा सकता है। ❑

(रीडर, भूगोल विभाग, स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
दूबेछपरा, बलिया (उ.प्र.)।)

नए प्रकाशन

न्यायालयिक विज्ञान की नई चुनौतियां

पुस्तक : न्यायालयिक विज्ञान की नई चुनौतियां; लेखिका : सुश्री डा. शरद सिंह; प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-2; मूल्य : 200 रुपये; पृ. सं. : 176

न्यायालयिक विज्ञान एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें हिंदी की पुस्तकों का बहुत अभाव है। न्यायालय में उन लोगों का अधिक काम पड़ता है जो वास्तव में अंग्रेजी नहीं जानते जबकि न्यायालयों में अधिकतर कामकाज आज भी अंग्रेजी में ही होता है। न्यायालयिक विज्ञान को जानने और समझने के लिए डा. शरद सिंह की यह पुस्तक सहायक है।

डा. शरद सिंह ने पं. गोविंदवल्लभ पंत पुरस्कार योजना के अंतर्गत इस पुस्तक को गहन अध्ययन के बाद तैयार किया है। अपराध विज्ञान एवं न्यायालयिक प्रक्रिया के पारस्परिक सहयोग से न्यायालयिक विज्ञान का जन्म हुआ है, जो अपने आप में न्याय क्षेत्र है और जिसके अंतर्गत विदेशों में बहुत अधिक शोध हो रहे हैं। ऐसे में भारत में भी उन शोधों का अध्ययन एवं ज्ञान बहुत आवश्यक है। प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

पांच अध्यायों में इस पुस्तक में न्यायालयिक विज्ञान, न्यायालयिक विज्ञान की प्रचलित चुनौतियां, प्रचलित चुनौतियों के निराकरण में न्यायालयिक विज्ञान की भूमिका, न्यायालयिक विज्ञान की नई चुनौतियां और निष्कर्ष एवं सुझाव शामिल हैं। पुस्तक के अंत में 15 छायाचित्रों के साथ उनका विश्लेषण किया गया है जो वर्तमान न्यायालयिक विज्ञान की भूमिका को स्पष्ट करते हैं।

लेखिका ने अपने प्राक्कथन में कहा है: अपराधशास्त्र राय एवं तर्क पर आधारित होता है, इसलिए उसमें वस्तुनिष्ठता की कमी होती है। वस्तुनिष्ठा न्यायालयिक प्रक्रिया को तथ्यगत आधार प्रदान करती है।

अपराध-अन्वेषण में निष्कर्ष की सुनिश्चितता को स्थापित करने तथा वस्तुनिष्ठता लाने के लिए इसमें विज्ञान को समाहित कर अपराध-विज्ञान का रूप दे दिया गया।

अपराध विज्ञान एवं न्यायालयिक प्रक्रिया परस्पर सहयोग से जिस विषय को जन्म देती है, वह है 'न्यायालयिक विज्ञान।'

न्यायालयिक विज्ञान की नई चुनौतियों के अंतर्गत विभिन्न अपराधों के अलावा अपराध-दबाव के विरुद्ध एक और पक्ष का भी समावेश किया गया है, जो कर्मचारियों, संसाधनों एवं बजट की कमी है। प्रचलित चुनौतियों का विश्लेषण इससे पूर्व किया गया है। इसके बाद उनके निराकरण में न्यायालयिक विज्ञान की भूमिका का विस्तार से विवेचन किया गया है।

न्यायालयिक विज्ञान से जुड़े लोगों और उसमें रुचि रखने वालों के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। सहज एवं सरल भाषा में न्यायालयिक विज्ञान जैसे जटिल विषय को समझाना बहुत दुष्कर है लेकिन लेखिका ने यह कर दिखाया है।

दोपहर की धूप

पुस्तक : दोपहर की धूप (कहानी संग्रह); लेखक : अनिल कुमार सिन्हा; प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; मूल्य : 150 रुपये; पृ. सं. : 176

'दोपहर की धूप' अनिल कुमार सिन्हा का दूसरा कहानी संग्रह है। इस संग्रह में श्री सिन्हा की 14 कहानियां संकलित हैं। 'दोपहर की धूप' की कहानियां लीक से

अलग हटकर हैं और कभी-कभी ऐसा लगता है कि लेखक ने कोई दृश्य चित्र ज्यों का त्यों उतार कर रख दिया है। 'दोपहर की धूप' अरब सागर के किनारे होटल के स्वीमिंग पूल की एक ऐसी घटना का तानाबाना है जो अंतहीन होकर भी सिमटती हुई महसूस होती है। इसी तरह 'शाम के पहले' भी दृश्य चित्र से अलग नहीं लगती। 'जरूरत' में पीछा करती हुई अतीत की परछाइयां हैं जबकि 'एक प्रश्न कानून और व्यवस्था का' और 'धुंधलके के कांच वाली खिड़की' एक तरह से नौकरशाही व्यवस्था को उजागर करती है, जबकि 'डायन' पूर्वोत्तर की लोककथा की तर्ज पर लिखी गई कहानी है।

'अच्छे लोग' में कस्बे की मानसिकता और जीवन का चित्रण है तो 'प्रतीक्षा' जैसा कि नाम से स्पष्ट है इंतजार से जूझते हुए व्यक्ति की मनोव्यथा को चित्रित करती है। 'लिमका की पांचवी बोतल' धंधेबाजी पर लिखी चलताऊ कहानी लगती है लेकिन 'अंगूठा' भी उसी तर्ज की कहानी होते हुए भी दूसरों को बेवकूफ बनाकर अपनी नेतागिरी चमकाने वालों के चेहरों को बेनकाब करती है। 'युद्ध' एक ऐसी रेलयात्रा का तानाबाना अपने में समेटे है जिसमें यात्रा के दौरान समय काटने के लिए की गई चुहलबाजी का चित्रण है। 'अड़हुल का फूल' एक बेबस नारी की व्यथा है, जिसका निरंतर शोषण होता है, 'कथा' वास्तव में कहानी नहीं कहानी की तर्ज पर लिखा ललित निबंध अधिक लगती है, जबकि 'एक प्रेम कहानी' किस्सागोई की शैली में लिखी गई है।

अनिल कुमार सिन्हा उन छोटी-छोटी घटनाओं और क्षणों को भी कहानी के ताने-बाने में उलझाने में सिद्धहस्त हैं, जो हमारे जीवन में घटती हैं, उनमें से कुछ जीवंत कहानियां बन जाती हैं तो कुछ दृश्य चित्र बनकर रह जाती हैं। कहानी का कहानी न होकर दृश्य चित्र बन जाना लेखक की कमजोरी है। वैसे किस्सागोई में उन्हें महारत हासिल है और सहजता कहानियों की विशेषता है। उम्मीद है कि वे अगले संग्रह में कहानियों के साथ दृश्य-चित्र बनाने की कंजूसी नहीं करेंगे। ❑

समीक्षक—देवेन्द्र उपाध्याय

सदस्यता कूपन

❑ नई सदस्यता ❑ नवीनीकरण ❑ पता बदलने के लिए

(जो लागू होता हो उस पर '✓' का चिन्ह लगाएं। कूपन भरने से पहले पिछली तरफ दी गई सूचना ध्यानपूर्वक पढ़ लें।)

मैं.....(पत्रिका का नाम एवं भाषा)

का ❑ वार्षिक (70 रुपये) ❑ द्विवार्षिक (135 रुपये) ❑ त्रिवार्षिक (190 रुपये) सदस्य बनने का इच्छुक हूं।

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर संख्या ..... तारीख .....

नाम .....

वर्ग .....

पता : .....

.....

.....

पिन .....

नवीनीकरण/पता बदलने के लिए कृपया अपनी सदस्य संख्या लिखें [ ]

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर 'निदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवाएं और कूपन के साथ निम्न पते पर भेजें :
विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक IV, लेवल VII, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110066,
दूरभाष : 6100207, 6105590

पहली प्रति की प्राप्ति हेतु आठ से दस हफ्ते का समय दें।

भारतीय चिकित्सा पद्धतियों एवं औषधीय फसलों की खेती को बढ़ावा

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा तैयार भारतीय चिकित्सा पद्धतियों और होम्योपैथी से संबद्ध पहली राष्ट्रीय नीति के प्रारूप में कहा गया है कि देश में 'सबके लिए स्वास्थ्य' का लक्ष्य हासिल करने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए भारतीय चिकित्सा पद्धतियों और औषधीय तथा सुगंधीय फसलों की खेती को बढ़ावा दिया जाना बहुत जरूरी है। यह प्रारूप विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों और राज्य सरकारों के विचार जानने के लिए उन्हें उपलब्ध कराया गया है। प्रारूप में कहा गया है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) भी यह स्पष्ट कर चुका है कि सबके लिए पर्याप्त चिकित्सा सुविधाओं का लक्ष्य अकेले एलोपैथी के बलबूते पर हासिल नहीं किया जा सकता।

विश्व में औषधीय पौधों पर आधारित उत्पादों का कुल वार्षिक व्यापार 62 अरब डालर यानी लगभग 30 खरब रुपये का है। यूरोपीय देश इनके सबसे बड़े आयातक हैं।

आलोच्य नीति में भारत से औषधीय पौधों पर आधारित उत्पादों और कच्चे माल के निर्यात को 500 करोड़ रुपये से बढ़ाकर अगले पांच वर्ष में 3000 करोड़ रुपये तक ले जाने का लक्ष्य रखा गया है। आयुर्वेद, होम्योपैथी, यूनानी और सिद्ध चिकित्सा पद्धतियों से जुड़ी दवाओं का भारत का घरेलू बाजार करीब 4200 करोड़ रुपये वार्षिक का है।

हम निम्न पत्रिकाएं दिल्ली से प्रकाशित करते हैं :

योजना (अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और उड़िया) **कुरुक्षेत्र** (अंग्रेजी और हिन्दी) **आजकल** (हिन्दी और उर्दू) और **बाल भारती** (केवल हिन्दी)।

चंदे की दरें : **वार्षिक** : (70 रुपये); **द्विवार्षिक** : (135 रुपये); **त्रिवार्षिक** : (190 रुपये)

सदस्यता के लिए आप हमारे इन विक्रय केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं :

प्रकाशन विभाग के विक्रय केन्द्र

पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली; सुपर बाजार, कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001; हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054; कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400038; राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई-600090; 8 एस्पेलनेड ईस्ट, कोलकाता-700069; बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004; प्रेस रोड, तिरुवनंतपुरम-695001; 27/6 राम मोहन राय मार्ग, लखनऊ-226001; राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004; प्रथम तल, 'एफ' विंग, केन्द्रीय सदन कोरामंगला, बंगलौर-560034, अम्बिका काम्प्लेक्स, प्रथम तल, यूको बैंक के ऊपर, पल्दी, अहमदाबाद-380007; नोजन रोड, उजान बाजार, गुवाहाटी-781001

पत्र सूचना कार्यालय के विक्रय केन्द्र

सी.जी.ओ. काम्पलेक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.); 80 मालवीय नगर, भोपाल-462003; बी/7/बी, भवानी सिंह मार्ग, जयपुर-302001;

विकास समाचार

भारत-यूरोप विमानन परियोजना मंजूर

भारत और यूरोपीय संघ के बीच 130 करोड़ रुपये की नागर विमानन सहयोग परियोजना के औपचारिक अनुमोदन के साथ ही इस आर्थिक सहयोग कार्यक्रम ने पंख पसार लिए। परियोजना से जुड़ी संचालन समिति की ब्रुसेल्स में 22 अक्टूबर को हुई दूसरी बैठक में इसे हरी झंडी दिखा दी गई। हवाई परिवहन के सभी बुनियादी पक्षों में सहयोग का मार्ग प्रशस्त करने वाली इस परियोजना से हवाई सुरक्षा और संबद्ध प्रक्रियाओं को मजबूती मिलेगी तथा भारतीय और यूरोपीय एरोस्पेस उद्योगों के बीच सहयोग का विस्तार होगा।

कृषि के जरिए रोजगार सृजन

उद्योग जगत ने दसवीं योजना में कृषि और संबद्ध व्यवसायों पर ध्यान देने का आग्रह करते हुए कहा है कि रोजगार संवर्धन की जितनी संभावना इस क्षेत्र में है किसी दूसरे क्षेत्र में नहीं। इसके लिए गांवों में विकास का आधारभूत ढांचा उपलब्ध कराने तथा ऋण और विपणन सुविधाएं मुहैया कराने की जरूरत है। कृषि क्षेत्र के विभिन्न खंडों की रोजगार सृजन संभावना का ब्यौरा देते हुए एसोसिएटेड चैम्बर आफ कामर्स एंड इंडस्ट्री (एसोचैम) के संचार निदेशक सुकुमार शाह ने कहा कि कृषि क्षेत्र, एकीकृत वानिकी और पुष्पकृषि से सात लाख अतिरिक्त रोजगार पैदा होंगे। औषधीय जड़ी-बूटियों, बीज और रोपण सामग्री से 63.27 लाख तथा पशुपालन से एक करोड़ 37 लाख रोजगार सृजित होने की उम्मीद है।

एसोचैम के अध्ययन के मुताबिक मत्स्य पालन से 11.17 लाख, रेशमकीट पालन से सात लाख, वनीकरण, बंजर भूमि विकास तथा भूरक्षण से पांच करोड़, जलसंचय और सरोवर विकास से दस लाख, कम्पोस्ट खाद तैयार करने एवं जैव कृषि से पांच लाख तथा कृषि उद्योग परिसरों के विकास से दस लाख और रोजगार उपलब्ध हो सकते हैं।

पीएसएलवी की लगातार पांचवीं सफल उड़ान

भारत ने दो विदेशी उपग्रहों सहित तीन उपग्रहों को सफलतापूर्वक एक ही अभियान में प्रक्षेपित करके अन्तर्राष्ट्रीय प्रक्षेपण बाजार में जोरदार प्रवेश का संकेत दिया है। अन्तरिक्ष में देश की क्षमता उस समय प्रदर्शित हुई जब तीसरी पीढ़ी के प्रक्षेपक यान पीएसएलवी-सी3 ने भारत के 1108 किलोग्राम वजन के प्रौद्योगिकी परीक्षण उपग्रह टी ई एस, बेल्जियम के 94 किलोग्राम वजन के प्रोबा और जर्मनी के 92 किलोग्रम वजन के बर्ड उपग्रहों को उनकी कक्षाओं में सफलतापूर्वक स्थापित कर दिया। पी एस एल वी की यह लगातार पांचवीं सफल उड़ान है।

निर्यात बढ़ाने के लिए राज्यों को 97 करोड़ की मदद

वर्तमान वित्त वर्ष से केंद्र प्रायोजित योजना के तहत राज्यों को इस बात के लिए प्रेरित किया जाएगा कि वे निर्यात संवर्धन गतिविधियों के लिए विशिष्ट क्षेत्रों की पहचान करें। वाणिज्य मंत्रालय द्वारा बनाई गई 97 करोड़ रुपये की इस स्कीम का उद्देश्य राज्यों में निर्यात की आधारभूत सुविधाएं विकसित करना है। राज्यों को यह अधिकार होगा कि निर्यात बढ़ाने से संबंधित मामलों पर वे फैसले स्वयं कर सकें।

सरकारी सूत्रों के मुताबिक योजना आयोग ने मंत्रालय से यह सुनिश्चित करने को कहा है कि स्कीम कुछ चुने हुए क्षेत्रों में केन्द्रित की जाए ताकि निर्धारित राशि का सार्थक उपयोग हो सके। चूंकि वर्तमान वित्त वर्ष में छह महीने बीत गए हैं, इसलिए मंत्रालय शेष अवधि में आबंटित धन के उपयोग में तत्परता लाएगा। सबसे अधिक जोर निर्यात संभावना वाले क्षेत्रों की पहचान पर दिया जाएगा।

प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110 001
से प्रकाशित एवं मुद्रित तथा तारा आर्ट प्रेस, बी-4, हंस भवन, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में मुद्रित। दूरभाष : 3378626, 3379686
कार्यकारी संपादक : अंजनी भूषण

रजि. सं. डी. एल. 12036/2001 लाइसेंस संख्या यू (डी.एन.)-53/2001 डाक व्यय की पहली अदायगी किए बिना डाक में डालने के लिए लाइसेंस प्राप्त पंजी सं. 951/57
Reg. No. D.L. 12036/2001 R & Licence No. U (D.N.)-53/2001 to post without pre-payment at RMS, Delhi. R.N. 951/57

'ग्रामीण पुनर्निर्माण'

गणतंत्र दिवस 2002 विशेषांक

महत्वपूर्ण मुद्दों पर ध्यान आकर्षित करने की अपनी परंपरा को जारी रखते हुए वर्ष 2002 के गणतंत्र दिवस विशेषांक के लिए **योजना** ने 'ग्रामीण पुनर्निर्माण' विषय का चयन किया है। चयनित विषय पर अनेक दृष्टिकोणों से विचार करते हुए खाद्य सुरक्षा, खाद्य पदार्थों के निर्यात में भूमंडलीय प्रतिस्पर्धा, शिक्षा, कृषि विकास, लघु उद्योग, श्रम, ऋण, गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोत, आवास, पंचायती राज आदि विषयों पर विशेषज्ञों द्वारा लिखे गए लेख इस अंक में शामिल किए जाएंगे।

पाठकों से अनुरोध है कि वे अपनी प्रति या तो एजेंट के पास सुरक्षित करवा लें अथवा निम्न पते पर संपर्क करें :

विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक,
प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय,
ईस्ट ब्लाक IV, लेवल VII, आर.के. पुरम,
नई दिल्ली-110066 (फोन : 6105590, 6100207)

विशेषांक की कीमत **15 रुपये** होगी।